बड़ी चम्पा

छोटी चम्पा

लक्ष्मीनारायण लाल

बड़ी चम्पा छोटी चम्पा

गत दो दषकों में सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा' पहले धर्मगुरू में धारावाहिक रूप में और फिर पुस्तक रूप में कई संस्करणों में प्रकाषित होकर पाठकों के बीच अत्यधिक चर्चित रहा है। कई भारतीय भाषाओं में लगातार अनूदित होकर आंचलिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। साहित्यिक स्तर पर इसकी कलात्मकता, पाठक स्तर पर इसकी सुन्दरता ने हिन्दी उपन्यास साहित में इसे जो महत्व प्रदान किया है वह सर्वविदित है।

यह दो ऐसी नर्तकियों की मानवीय कथा है जो स्त्री होने के मूल्य को अपने जीवन से चुकाती हैं। बड़ी चम्पा नर्तकी है। छोटी चम्पा गायिका और नर्तकी दोनों है। पर दोनों चम्पायें इन्सान भी हैं जिसे यह समाज स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उसी इंसानियत की बलीवेदी पर इन दो चरित्रों की जीवंत कथा आधुनिक हिन्दी उपन्यास में चिर स्मरणीय है।

तीसरा संस्करण 1973

प्रकाषक :

पीताम्बर बुक डिपो
888, ईस्ट पार्क रोड, करौल बाग,
नई दिल्ली–110005

मुद्रक :

पीताम्बर प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

रोज की तरह वही पुराना सूरज रहीमन की छत के ऊपर से उगा। सराय की वही जिन्दगी फिर शुरू होने लगी–वही पुरानी जिन्दगी नहीं जो सत्रहवीं शताब्दी से चली आ रही थी, नयी जिन्दगी, जिसका जन्म पिछले माह

में हुआ था, बारह दिसम्बर उन्नीस सौ अठ्ठावन को। जन्मदाता था, समाज कल्याण विभाग, और धारा थी वैष्या उन्मूलन की 'इम्पॉरल ट्रैफिक.....।'

गोरखपुर के हाकिम थे तेजबहादुर सिंह कलक्टर, इकबाल नारायण कोतवाल, और सिटी मजिस्ट्रेट हरिमोहन चटर्जी। इन सबसे ऊपर असली हाकिम था बसंतपुर के सराय की पुलिस चौकी का दीवान सैयॉसिंह और सब–इंस्पेक्टर राजाराम राय।

कुछ एक महीने का समय। कहॉ चार सौ वर्ष, कहॉ केवल तीस दिन। राजा का हुक्म। सरकार का फरमान। रंडियॉ अब से रंडियॉ नहीं रह सकतीं। उन्हें शादीषुदा होकर इस सराय से अलग अपना घर बसाकर रहना होगा। रूप–जीवाओं को शरीर का व्यापार बंद कर केवल नृत्य और गान–कला में रहना होगा। दिलरूबा, बाजार की ये परियॉ घर और समाज में अब सर्वथा दूसरे ढंग से रहेंगी। ये भोगांगनाऍं, तवायफें अब से सम्मानित, मर्यादित स्त्री. .....नारी का रूप पाऍंगी।

एक महीने की भीतर ही बाजार की इन परियों को यहॉ से कहीं उड़ जाना होगा। चाहे पंख हों या नहीं, परियों को उड़ना होगा, ऐसा फरमान है । नहीं तो जेल।.....कोतवाली की उस अंधकोठरी में चौबीस घंटे बिना दाना –पानी बंद। सराय की पुलिस चौकी में सैयॉसिंह का वह लपलपाता हुआ बेंत। सिटी मजिस्ट्रेट का वह इजलास। कलक्टर का वह चपरासी, वे पुलिस के लोग। पिछले इतने दिनों में सराय की वे दिलरूबाऍं इन सबसे किसी–न–किसी रूप में परिचित हो गई थीं। नयी जिन्दगी की उन तलखियों से रूप–जीवाऍं बेतरह सहम गई थीं।

सराय के दरवाजे पर जो मेहराबदार छोटा–सा दरवाजा है, दाहिनी ओर, उसमें कहीं पगला कल्लू चुपचाप बैठा हुआ अजीब नजर से पिछले पन्द्रह–बीस दिनों से लगातार देख रहा है; आगे–आगे ठेले पर सामान लादा जा रहा है, पीछे–पीछे सराय के दरवाजे से तॉगा निकल रहा है। विदा होने वाली दिलरूबा आगे बढ़ती हुई घूम–घूमकर पीछे देख रही है। ऊपर कोठों से, खिड़कियों और सामने वारजों से लगी हुई शेष सहभोगिनी तवायफें उसे देख रही हैं। न आदाब कह पा रही हैं, न उनके हाथ ही उठ रहे हैं। सिर्फ सबकी ऑखे भारी–भारी हैं। तॉगा सराय के बाहर निकल जाता है। जाने वाली सराय की देहरी पर सहसा ठिठक जाती है, जैसे कि उसके कदमों को विष्वास नहीं होता कि उसे बाहर भी जाना है। बाहर, पर कहॉ ?

सराय के आंगन में बिग्गी चिल्लायी 'ओ अल्ला ! खैर सल्ला !'' फिर तेज हॅसती हुई वह उसी देहरी के पास आ खड़ी हुई, जहॉ विदा होने वाली दिलरूबा निष्प्रयोजन ठिठक गई थी।

अपने तन का कपड़ा फाड़ती हुई बोली, ''ओ मेरी जान, कहॉ जा रही हो ?'' मेहरबदार जंगले में बैठा हुआ कल्लू गुस्से से लाल हो गया। दोड़कर उसने बिग्गी के मुॅह पर मारा। सबको टोकती है, कहॉ जा रही हो ? कहॉ जा रही हो ?

ठेले, तॉगे, रिक्षे, इक्के आदि चले जाते, कल्लू और बिग्गी आपस में गाली–गलौच करते और कभी–कभी बिग्गी बिल्कुल नंगी होकर सराय के आंगन में बुत की तरह खड़ी हो जाती, और अन्त में अकेले अपने–आप से कुछ बातें करने लगती, '' आयेगा दाढ़ीदार, मारूॅगी, कीमा बनाकर साले को खा लंगी !

कहने लगा एक दिन, मैं बुढ़िया हो गयी ! साले हरामी, तूने एक–पर–एक मेरे बच्चे गिराए.....हॉ–हॉ, तूने गिराए ! मेरा मुॅह, क्या देख रहा है ? मैं वही इषरत बेगम हूॅ रे ! नागिन की तरह डस लूॅगी, हॉ ! बिना रूपये मेरा जोबन देखने आया है। देख मेरी जवानी देख ! नंगी धोविन देख ! बंगाल का बंदर देख ! लाल किला देख ! इस दिलरूबा को देख ! दे–दे पैसा चल कलकत्ता। छुक्–छुक्, छुक्– छुक् ! दे–दे पैसा चल कलकत्ता।''

उस बसंतपुर की सराय में दो चम्पा थीं। बड़ी चम्पा और छोटी चम्पा।

बड़ी चम्पा गोरी थी, बहुत गोरी, बहुत सुन्दर। नथ तो गोइन्दा के महन्त ने उतारी थी, दो गिन्नी चढ़ाकर। उन्नीस सौ पचास की बात है। फिर डोमिनगढ़ का ठेकेदार किसोरीलाल, रेती पै बॅगला छवाय दे किसोरीलाल, आवै लहर जमुना की।

फिर उर्दू बाजार के सर्राफ दीनानाथ के लड़के रूपचन्द। बस्ती जिले के बाबू साहब के कुॅवरजी। और.....

.

छोटी चम्पा पक्के पानी की थी। खूब बड़ी–बड़ी ऑखे ! छरहरे बदन की ! बड़ी चम्पा जितनी ही उम्दा गाती थी, उतना ही श्रेष्ठ छोटी चम्पा नाचना जानती थी। और दोनों जब एक सुर तान युगल स्वर में गाने बैठती थीं, एक ही गीत, एक ही गजल, दादरा और कजली सावन चैती, तो गजब ढा उठता था। सारी सराय स्तब्ध रहकर उन्हें सुनने लगती थी।

छोटी चम्पा बड़ी को आदि से ही 'जिया' कहती थी, और बड़ी चम्पा छोटी को 'बहिना'। बस, इसके अलावा और कुछ नहीं। एक सत्य। सराय में दोनों के कोठे आमने–सामने थे।

बड़ी चम्पा को संरक्षण मैनाजान से मिला था।

और छोटी चम्पा को बिट्टनजान से।

दोनों को ये नाम मैनाजान ने ही दिये थे। और उसी ने इन्हें एक साथ उस जीवन का सारा सबक दिया था–गाना, नाचना, नाज–नखरे, तहजीब–तमद्दुन।

मैनाजान को दिवंगत हुए आज पॉच साल हुए। दो साल पहले बिट्टनजान ने बहराइच में एक रिटायर्ड आबकारी इंस्पैक्टर के साथ घर कर लिया।

तब से दोनों चम्पा एक साथ हैं। घर अलग–अलग हो तो क्या ! एक घर में ताला, दूसरा घर आबाद। यूँ चिराग दोनों घरों में जलते है। सेज दोनों जगह.....।

पर तब से एक ही नींद दूसरे की प्यास।

एक की भूख दूसरे की सॉस।

चम्पा सखी हैं।

चम्पा बहना हैं।

''नहीं, नही.....नहीं। कुछ नहीं। ये दोनों छतीसी रंडियॉ हैं। अभागिन हैं..... पतुरिया हैं।'' सराय के ऑगन में बिग्गी चिल्ला–चिल्ला कर कहने लगी।

नीचे नम्बर छः, ग्यारह और तेईस की तीनों रंडियॉ सराय से आजमगढ़ के लिए विदा हो रही थीं। कल्लू अपनी टूटी रकाबी बजाता हुआ गा रहा था–अपन हैं इष्क मस्ताना, अपन को होषियारी क्या !

बिग्गी गम्भीर होकर कल्लू के पास आ खड़ी हुई और बड़बड़ाती हुई बोली, ''ऊपर वही साला आया है नमकीन लौंडा, फूल.....फूल बाबू। बड़ी को ले जाएगा। ऊपर उसी को गोद में लिए बैठी है। छोटी पंखा झल रही है। बड़ी हसीना है जीवन वाली, जैसे गद्दर अनार, जैसे मुगलों की फौज, जैसे जुलमी कटार। और छोटी बाजार में मूँगफली बेचेगी। मूँगफली करारी नयन रतनारी भकाभक भकाभक। नीचे उतरे, आज मैं उसे मारूँगी साले को।''

कल्लू ने अपनी टूटी रकाबी में से एक रोटी निकाल कर बिग्गी को पकड़ा दी। उसने रोटी को मरोड़कर बड़ी चम्पा के कोठे पर खींच–कर मारा।

आसमान में दो कौवे उड़े और रोटी को चोंच में लेकर रमजानी के कोठे से ऊपर चले गये।

खलीलाबाद तहसील में बहिराताल के किनारे देईपारा गॉव का यह फूल बाबू। बी0ए0 पास करके सेण्ट्रऐन्ड्रज कॉलेज में पिछले चार वर्ष से लॉ का इम्तहान दे रहा था।

ऊपर कोठे पर दोनों चम्पा रो रही थीं। फूल बाबू कह रहा था, मुझे जिससे इष्क है उसी को मैं ले जाऊँगा। बड़ी चम्पा कह रही थी, यह छोटी कहॉ जायेगी ? मैं इसे छोड़कर कैसे जाऊँगी ? छोटी कह रही थी, तुम जाओ, ईष्वर तुम्हें सुखी रखे बहिना, मेरे लिए तुम अपनी तकदीर क्यों खराब कर रही हो ? कहीं–न–कहीं तो मैं रहूँगी ही। डोमिनगढ़ में शराब के अड्डे का ठेकेदार छोटी को ले जाना चाहता है। ढाई सौ रूपये महीने पर। ऊपर से जो इनाम–इकराम मिले वह मुफ्त ही। पर छोटी चम्पा वहॉ नहीं जायेगी। वह कहती है, मैं भी वही जाऊँगी जहॉ इस सराय की साढ़े सात सौ रंडियॉ जायेंगी। अब तक मैंने जितना भोगा है, उसे अब क्यों छोड़ दूँ ? वही तो मेरी ताकत है। मैं किसी की मुहताज क्यो ? और छोटी चम्पा साफ कहती है, मैं न किसी की रखैल बनूँगी न नौकर। मै रंडी हूँ, रंडी ही रहूँगी, चाहे जहॉ जाऊँ। और मैं देखूँगी यह दुनिया कितनी लम्बी–चौड़ी है। अच्छा हुआ यह सराय टूट रही है। इस सराय में एक दरवाजा था। अब इसे असंख्य दरवाजे मिलेंगे। सनातन से चला हुआ यह रास्ता सराय के इस कुऍ में आ गिरा था। वह रास्ता आज सैकड़ों वर्ष बाद उस कुऍ से मुक्ति पाएगा, और वह रास्ता असंख्य रास्तों में बिखर जाएगा। मैं देखूँगी उसे बहिना ! तुम जाओ फूल बाबू के संग। मेरी चिन्ता ! चिन्ता

की अधिकारणी मैं नहीं हूँ। चिन्ता बहू–बेटी की होती है, अबोध और सरल की होती है। जड़ की क्या चिन्ता बहिना ! जब तक यह शरीर रहेगा, मैं रहूँगी। हॉ रहूँगी !

बड़ी चम्पा ने फूल बाबू से कहा–इस सराय से मुझे रात को न ले चलो। रात में मुझे कोठे से बाहर डर लगता है। मुझे यहॉ से दिन में ले चलो। और यदि कहीं सूरज निकले ले चलो तो क्या कहने !

किन्तु फूल बाबू रात में ही ले जाना चाहता है। दस बजे। वह भी तॉगे पर बिठाकर नहीं, रिक्षे पर। चुपचाप राप्ती नदी–पार। घाट पर उधर एक जीप आयेगी, बारह बजे रात के लगभग। फिर उसी पर बिठाकर वह फूल के संग उसके गॉव चली जायेगी, देईपारा।

पूस माह का पहला पखवारा। बड़ी चम्पा के लिए बृहस्पति दिन शुभ है। मैनाजान ने अपनी चम्पा को दुर्गाजी की एक अद्‌भुत मूर्ति दी थी और कहा था–बेटी, न सही पूजापाठ चाहे, ध्यान लगे या नहीं, नित्य सुबह–षाम इस मूर्ति को जरूर प्रणाम करना।

बड़ी चम्पा को सराय से फूल बाबू रात को ही विदा कराने आया। अच्छा, कोई बात नहीं। रात ही सही। लेकिन ठहर जाओ थोड़ा। सराय के ऑगन से बिग्गी को हट जाने दो, सराय के दरवाजे से भीड़ टूट जाने दो।

साथ में एक बक्स और सितार लिए हुए बड़ी चम्पा फूल बाबू के संग सराय से विदा हो गई। छोटी चम्पा नीचे जीने तक आयी, और माथा थामकर वहीं सीढ़ियों पर बैठ गई। जाओ बहिना, आगे तुम्हारा रास्ता तुम खुद हो। तुम्हारा विष्वास है। मैं यही सराय में हूँ।

बड़ी चम्पा डरी हुई मृगी की भॉति फूल बाबू के अंक से लगी हुई रिक्षे पर चली गई। जै मॉ दुर्गा ! जै गोरखनाथ बाबा ! जै असुरन का पोखरा !

पुल से राप्ती नदी पार करती हुई बड़ी चम्पा ने घूमकर गोरखनाथ की ओर निहारा।

बड़ी चम्पा को आज सहसा याद आया, वह मैनाजान के साथ पहली बार बड़ी–सी नथ पहले गोरखनाथ के इस छोर पर डोमिनगढ़ के पास कवलदह मानसरोवर पोखरे के मंदिर में नाचने गई थी। उसे याद आया उस पोखरे की कथा, मैनाजान ने बताई थी। सौ गायें सात दिन तक प्यासी रखी गई थीं। एक ओर वह पोखर पानी से लबालब भरा हुआ लहरा रहा था, दूसरी ओर सात गायक तानपूरा लिये बैठे गा रहे थे। गायें छोड़ दी गई परीक्षा के लिए कि वे पानी पीती हैं या गायकों की ओर जाती हैं। गायन इतना अद्‌भुत था कि सात दिन की प्यासी गउएँ खिंची हुई गायकों को घेरकर खड़ी हो गईं।

बड़ी चम्पा को लगा वह वही गाय है, जो फूल बाबू के संग मंत्रमुग्ध खिंची हुई उसके संग–संग चली जा रही है। उसे सराय के बाहर की दुनिया का पता नहीं है। सिर्फ वह फूल बाबू को जानती है, आज से नहीं, आज से चार वर्ष पूर्व से वह फूल बाबू को निरन्तर जानती है, इसके पहले वह बसंतपुर सराय से अनेक बार नाचने–गाने गई है, बस्ती पुलिस लाइन, बॉसी के राजा के यहॉ, अष्टभुजा प्रसाद की कोठी में मंगलामुखी के रूप में, उनके यहॉ नाती के जन्म के अवसर पर। बहराइच, देवरिया, आजमगढ़, बलरामपुर, तुलसीपुर, और उस्का बाजार। कहीं मुजरा, कहीं जन्माष्टमी नाचने, कहीं ब्याह, कहीं गौना, कहीं अन्नप्राषन, कहीं मुण्डन, कहीं जनेऊ और कहीं विजय मनाने। कहीं सिर्फ विहार, केवल विलास.....।

पर आज उसे लग रहा है, वह पहली बार सराय से बाहर निकली है।

वह चकमक–चकमक चारों ओर देख रही है। वह शहर, जो अपने किनारे–किनारे संध्या से घने कुहरे में डूबा हुआ था, अब वह साफ दिखने लगा है।

ठीक बारह बजे 'लोको' का साइरन बजा। कोतवाली में घंटे बजे। बड़ी चम्पा की कमर में हाथ डालकर फूल बाबू ने उसे जीप में बिठा लिया। ड्राइवर घड़ी देखकर अपनी सीट पर बैठ गया।

बड़ी चम्पा थर–थर कॉप रही थी, न जाने क्यो फूल बाबू बड़े प्रेम से उसे बॉहों में सँभाले बैठा था। बीच–बीच में उसे चूम लेता था।

गाड़ी स्टार्ट होने को हुई। चम्पा फफककर रोने लगी। उसके हाथ–पैर इस तरह कॉपने लगे, जैसे उनसे उसकी जमीन छूट रही हो, वह सब छूट रहा हो, जो वह है, उसका है।

मेरी छोटी बहिना, चम्पा ! कल रात हम दोनों जागते ही रहे। सुबह अजान के वक्त तुमने गुनगुनाकर मुझसे कहा था–'गनीमत है ये साथ एक रात का, खुदा जाने कल हम कहॉ, तुम कहॉ।'

जीप बस्ती वाली सड़क पर चल पड़ी।

बड़ी चम्पा को सहसा भार हुआ कि जो पुरूष उसे कब से अपनी बॉहों में लिये हुए है, वह उसका प्रेमी पुरूष फूल बाबू है, वही फूल बाबू जो उसकी खातिर लॉ की परीक्षा में अपने–आप को बार–बार फेल करता है; वही फूल बाबू जो उसकी गत चार वर्षों से उसकी नजरों के सामने है। जिस दिन फूल बाबू दर्षन देने नहीं आते थे, बड़ी चम्पा कल्लन के हाथ में दस रूपये का एक नोट रख देती थी और कहती थी, जा कल्लन, मेरे उसी राजा को ढूंढकर ला। कहॉ रह गये। आज अब तक नहीं आये।

कल्लन नोट को कान पर रख लेता था और सराय के ऑगन से यही गाता हुआ बाहर निकल जाता था–'अजीब हुस्न है इन सुर्ख–सुर्ख गालों में, मैए–दोआनषा भर दी है जो पियालों में।'

उसे विष्वास हुआ कि सच–सच उसी फूल बाबू के अंक में है। जिस ख्वाब को वह कितने दिनों से देख रही थी, आज वह पूरा हुआ। सरोवर को कमल का फूल मिल गया, अपना। फिर भी इस तरह मैं कॉप क्यों रही हूँ ? मन शान्त है, प्रसन्न है। आत्मा मुक्त है। पर यह शरीर क्यों इस तरह कॉप रहा है ? इतना तो पहने हूँ, अपने मालिक के हाथ के पहनाये हुए इतने बेषकीमती गहने। ये ऊनी कपड़े। यह शाल। यह मोटा नरम कम्बल। और सबसे ऊपर मेरा यह जीवन–पुरूष। चम्पा ने अपूर्व उल्लास से फूल बाबू के मुख को अपनी छाती में गाड़ लिया और उसकी जुल्फ से खेलती हुई सामने शीषे से परे देखने लगी। जीप की दोनों बत्तियां, उदार, लम्बी, आजानुबॉहों की तरह फैली थी। गाड़ी की रफ्तार बहुत तेज थी।

गोलागंज थाने के सामने दीवान ने सहसा सीटी बजार जीप रोक ली।

कहॉ जा रही है गाड़ी ?

खलीलाबाद।

लाइसेन्स ?

ड्राइवर ने कागज दिखा दिया। तब तक फूल बाबू को चम्पा ने जगा लिया।

कहॉ जा रहे हैं आप लोग ?

कौन हैं आप लोग ?

यह कौन है ?

फूल बाबू फौरन उसे तपाक से उत्तर देना चाहते थे। जबान भीतन बोल भी गई मानो।

हॉ, हॉ, यह औरत.....?

यह मेरी औरत है, फूल बाबू ने तेज स्वर में कहा, 'मेरी पत्नी, माई वाइफ।'

चम्पा फूल बाबू के उस स्वर को सुनकर अभिभूत हो गई। उसे रोमांच हो आया। उधर दीवान के चेहरे पर न जाने कैसी हॅसी बिखर गई। चम्पा ने, केवल चम्पा ने देखा। और गाड़ी फिर चल पड़ी।

———————

2

सराय में इतवार की सुबह बेहद उदास। बाहर बजे तक कोठे जैसे सोते धुत ही रहते हैं किन्तु इतवार की वह सुबह.....। पिछले दिन सिटी मजिस्ट्रेट की तरफ से मुनादी हुई थी, ढोल पीट–पीट कर सुबरानी ने चिल्लाकर कहा था–'इतवार की शाम को गोरखपुर स्टेषन के प्लेटफार्म नम्बर तीन पर स्पेषल गाड़ी लगेगी। उसमें सराय की सब बची हुई रंडियों को बैठना होगा। और गोरखपुर से गोंडा स्टेषन के बीच सब रंडियों को उतर जाना होगा।'

इसलिए पिछली रात को सराय का भाव बेहद गरम हो गया था। जैसे सारा उर्दू बजार, जाफरा बाजार, काजीपुर, हुमायूँपुर और साहबगंज सराय में टूट पड़ा था। जैसे ताल में मछली मारी जाएँ।

छोटी चम्पा ने दो सौ चालीस रूपये का बाजार किया था।

छोटी चम्पा के पास जितने लोग आये थे, करीब–करीब सबने चम्पा को अपने पास रखने के लिए कहा था। पर चम्पा ने सबको 'नहीं' कहा था। तुर्कमानपुर मुहल्ले के मियॉ साहब के साहबजादे आबिदहुसैन, जाफरा बाजार के एक वकील साहब, मुहद्दीपुर का ठेकेदार, ये सब उसे औरत बनाकर अपने घर रखना चाहते थे, पर छोटी चम्पा ने सबको उत्तर दिया–'मैं रंडी हूँ, रंडी ही रहूँगी। मैं किसी की औरत बनकर नहीं रहना चाहती। मेरी अपनी जिन्दगी है। मैं छोटी चम्पा हूँ। आदमी–आदमी है। रूपया रूपया है। चम्पा.....आदमी

और रूपये। मैं जैसी हूँ वही रहूँगी, देखूँगी।

रात के चार बजे छोटी चम्पा आबिदहुसैन के साथ आखिरी मुजरा करके सोयी थी–'नषेमन फूँकने वाली हमारी जिन्दगी क्या है, कभी रोये, कभी सिज्दे किये खाके नषेमन पर'।

सुबह–ही–सुबह फिर वही मुनादी हुई, सराय के आंगन में घूम–घूम–कर मुनादी–'आज शाम को स्टेषन के प्लेटफार्म नम्बर तीन पर गाड़ी लगेगी। उसमें सराय की सब बची हुई रंडियों को बैठना होगा, गोरखपुर से गोंडा स्टेषन के बीच सब रंडियों को उतर जाना होगा और यह सरकार बहादुर का हुक्म है। हुक्मअदूली करने वाली और वालियों को सख्त–से–सख्त सजा दी जाएगी।'

थोड़ी ही देर बाद बसंतपुर सराय की पुलिस–चौकी का दीवान सैयॉसिंह मुँह पर भोंपू लगाकर बहुत ही अदा से कहने लगा–'तो कूच करने का समय अब आ ही गया। जो कूच नहीं करेगा, वह अपने से हाथ धोयेगा और ऊपर से जलील भी होयेगा। रंडीगाड़ी प्लेटफार्म नम्बर तीन पर ठीक दो बजे आ जायेगी। बहुकुम कलक्टर साहब बहादुर सिटी मजिस्ट्रेट और शहर कोतवाल के तुम सब लोगों को यह इत्तिला दी जाती है कि तुम सब रंडियॉ सराय को छोड़कर साढ़े चार बजे तक गाड़ी पर जरूर पहुँच जाओ। ठीक पॉच बजे रंडीगाड़ी प्लेटफार्म से कूच कर जाएगी। तुम सबकी सहूलियत के लिये बहुकुम सिटी मजिस्ट्रेट के दो सरकारी बसें यहॉ सराय के दरवाजे पर ठीक ढाई बजे लग जाएँगी.....।'

दीवान सैयांसिंह के सामने बिग्गी ठहाका मारकर हॅस पड़ी। खिलखिलाकर अपने तन का कपड़ा फाड़ती हुई बोली–लेगा। जोबन लेगा। बिना पैसे के जोबन लेगा। मुफ्त का माल। जियो मेरे लाल।'

सैयांसिंह मुँह बचाकर दूसरी ओर चला गया। उसका दिल आज पहली बार भीगने–सा लगा। उसने देखा, नीचे–ऊपर के अनेक कोठे उजड़े हुए थे। कई फटे–चिथे हुए गद्दे और लिहाफ फेंके हुए थे। एक जगह दो कुत्ते एक

तकिये और मसनद को बेतरह दॉतों के चीथ रहे थे और उसकी गंदी रूई इधर–उधर बिखर रही थी। दो–चार गरीब छोकरे इधर–उधर से रूई इकट्ठा कर रहे थे। कहीं से वे लोहे–पीतल के टुकड़े और पत्थर के कोयले बीन रहे थे। कबूतरों के झुँड उड़–उड़ कर सूने उजड़े हुए कोठों में आ–जा रहे थे। अबाबील चिड़ियों ने भी कोठों में उड़ना शुरू कर दिया था। सैयॉसिंह बरबस गुनगुना उठा : लष्कर भई कूँच उठ रे सिपहिया प्यारे !

सारे बचे हुए कोठे आज सुबह ही जग गये थे। न चाय, न पान, न बीड़ी– सिगरेट। रॅडियों को अपने निष्कासन की तैयारी में लग जाना पड़ा था। अनेक लोग तरह–तरह की भावनाएँ लिए हुए उन कोठों से आ–जा रहे थे।

किन्तु छोटी चम्पा का कमरा अब तक भीतर से बन्द था। कई लोग उससे मिलने आये, और वैसे ही लौट गए।

सैयांसिंह को अपने संग लिए हुए सब–इंस्पेक्टर राजाराम राय ने कोठों का मुआयना शुरू किया। जिस कोठे के सामने वे पहुँचते रंडियॉ उन्हें देखते ही रो पड़तीं।

दिलरूबाएँ अबद से पूछतीं–हम कहॉ जाएँगे, बताइये हुजूर हमें। बाजार की वे परियॉ कहतीं–हमें दो दिन की और मुहलत दीजिए हुजूर सरकार !

भोगांगनाएँ रो पड़तीं–हमारी तबीयत बहुत खराब है। पिछले चार दिन से बुखार है हमें। कोई कहती। देखिए सरकार, मेरी मॉ बीमार है। मैं इसे इस तरह लेकर कहॉ जाऊँ, बोलिए। कोई फरियाद करती–मेरा यह बच्चा अभी सिर्फ पन्द्रह दिनों का है। मैं इस तरह कहॉ जाऊँ सरकार ? रहम कीजिए !

पर सैयॉसिंह और राजाराम राय के पास इनमें से किसी प्रष्न का कोई उत्तर न था। वे बस खामोषी से आगे बढ़ जाते थे।

दूर जाकर कहते थे–झटझट तैयारी कर लो, ढाई–तीन बजे सरकारी बस पर चढ़ जाना है। हम भी तो मजबूर हैं, क्या करें जद्दन बाई.....

सोनाबाई.....शांती.....कजली.....नूरी.....रहीमन.....हीरा.....मन्नो.....कमला.....शमीमाबाई.....।

राजाराम ने छोटी चम्पा का दरवाजा खटखटाया, एक बार, दो बार। तीसरी बार धड़ाम से दरवाजा अपने–आप खुल गया। छोटी चम्पा पलंग पर बेहोष सोई थी।

सैयांसिंह ने कमरे में जाकर जगाना चाहा, फिर एकाएक रूक गया–'सरकार, इसे तो तेज बुखार है।'

'बुखार तो सबको है, हम क्या करें ?' सब–इन्सपेक्टर साहब ने कहा, 'पर इसे जगाओ। और इससे कहो, यह एक दरखास्त लिखकर मुझे दे। मैं इस सरकारी अस्पताल में दाखिल करने की कोषिष करूँगा। मुझे याद है, मेरी शादी में यह नाचने गई थी और तब तक इसका नथ नहीं उतरा था। सच नहीं उतरा था सैयॉसिंह।'

छोटी चम्पा की ऑख खुल गई।

झट तकिये के सहारे बैठकर बोली, 'गुस्ताखी माफ हो, तषरीफ रखिए। हुजूर, मेरी तबीयत बिल्कुल ठीक है। मुझे अब और मेहरबानी नहीं चाहिए। मैं यहॉ से जाने के लिए बिल्कुल तैयार हूँ, यह देखिए मेरा बक्स और बिस्तर।' छोटी चम्पा के स्वर में कम्पन था।

दरोगाजी ने कहा–'और तुम्हारा सामान ?

'मेरा सामान ?' चम्पा के सूखे ओठों पर व्यंग्य की थकी हुई मुस्कराहट फैल गई, 'मेरा सामान। मेरा कोई सामान नहीं है। मैं खुद एक सामान हूँ। लीजिए सिगरेट, शौक फरमाइए दारोगाजी ! हुजूर आली, काहे को आप लोग मेरी फिकर करते हैं ! खैर, बहुत–बहुत शुक्रिया आपको। लीजिए, आप भी सिगरेट शौक फरमाइए दीवान साहब ! ओहो, तो आप लोग डर गए कि मैं

अपने इस बंद कमरे में छिपी रह जाऊँगी। नहीं, ऐसा क्यों होगा हुजूर मैं तो हुजूर की रियाआ हूँ।'

राजाराम राय कमरे से बाहर निकले हुए बोले, 'तो तुम भी आज उसी गाड़ी से जा रही हो ?

'जी हां।' अजीब नखरे से चम्पा बोली।

'मगर तुम यहॉ रूक सकती हो। सराय से बाहर कहीं भी इस शहर में।'

'सुनों, नाज होटल का मैंनेजर मेरे पास कई बार आया है। वह तुम्हें अपने होटल में चाहता है। तुम्हें बीवी बनाकर रखेगा, हर्ज क्या है ?

'बीवी ! चम्पा को हॅसी आ गई। वह लिहाफ फेंककर छनछनाती हुई पलंग से नीचे खड़ी हो गई–नीचे से ऊपर तक शुद्ध रेषमी वस्त्र पहने हुए। पांवों में घूँघरू बॅधे–के–बॅधे ही रह गये थे। शरीर के फूल टूट–टूटकर पलंग पर बिखरे थे। असंख्य अंगड़ाइयॉ उस कमरे में वाद्ययंत्र की तरह झनझना उठीं। गजल की गायी हुई हर पंक्ति चंचल हिरनी की तरह कराह उठी। लायी हयात आये, कजा ले चली चले, अपनी खुषी न आये, न अपनी खुषी चले।

तो गत रात में इस छोटी चम्पा ने इतना श्रंगार किया था ! यह क्या बनी थी रात को ? ताज्जुब है और यह यहॉ से चली जाएगी। यह हूर। बाजार की जिन्दापरी। यह दिलरूबा। नहीं.....नहीं.....नहीं.....।

बीवी शब्द पर चम्पा की हॅसी टूटती ही न थी। वह हॅसती–हॅसती बेहोष होकर जमीन पर गिर पड़ी। पागल घुँघरू अनायास बजते ही रह गए। सिरहाने कसा हुआ तबला। पायताने मिली हुई वह सारंगी। दोनों से एक ही कम्पन, एक ही राग, विहाग, फिर भैरवी, फिर बसंत, फिर चैता और बारहमासा और उधर पूरब में शुक्रतारा, सारी रैनियॉ बीति गयो राजा,

भोरवे भये मन लागा।
कहवॉ बोलै काली कोइलया
कहवॉ बोलै कागा।
सजना दुआरे बोलै कोइलिया
अंगना में बोलै कागा।.....

उसे फिर कब होष हुआ, इसका पता उसे तब चला, जब सराय के ऑगन में फिर वही मुनादी हुई। उठकर उसने शीषे में अपने–आपको देखा, और अपने बीमार पर श्रंगारयुक्त मुख से पूछा–क्या तुम सच इतनी खूबसूरत हो ?

पर यह रूप, यह जवानी, यह अदा, यह शोखी, यह शरीर–अभिमान सब झूठ है। यह सब जड़ है, नष्वर है। तुम इसे ही सब–कुछ समझ–कर, इसी पर पूरा भरोसा करके चल रही हो। निष्चय ही तुम मॅझधार में डूब जाओगी। तुम शक्ति हो। आओ तुम पूर्ण समपर्ण दो। तुम माया नहीं शक्ति हो। आओ सब–कुछ दे दो मुझे। शक्ति लता को अवधूत गोरखनाथ ने जाना था। न उसकी जाति है, न रूप है न छाया है। छोटी चम्पा ने देखा जैसे उसके पीछे गोइन्दा के उस महन्त के गुरू गम्पनाथ की मूर्ति उभरकर छायी जा रही है।

छोटी चम्पा ने गुस्से में घूमकर देखा, मूर्ति गायब थी। उसने उस याद को जैसे बेधते हुए अपने–आप से कहा–दूर हो जाओ यहॉ से ! मुझे तुम पर जरा भी विष्वास नहीं। मुझे केवल अपने–आप पर विष्वास है। मेरा यह

रूप, यह जवानी, मेरा रंडीपन, यह शरीर–अभिमान सच है। मैं केवल यही हूँ, यही हूँ। यही मेरा विष्वास है, भरोसा भी।

शरीर का बुखार जैसे उसे याद नहीं आ रहा था। वह कहीं और ही देख रही थी। न जाने किस रहस्य–षक्ति से उसने अपने कपड़ों को सहेजकर बक्स में रखा, गहनों को उतार लिया। केवल अब गले में सोने की एक पतली माला, कान में बाली, नाक पर बुन्दा, हाथ में भरी हुई चूड़ियॉ। तन पर सब्ज रंग की चोली और साड़ी, जैसे कहीं भी कोई उदासी नहीं, दुःख नहीं, पराजय नहीं।

हर क्षण जिन्दा रहने वाली चम्पा ने अपने तपते हुए शरीर और मन से कहा–तुम्हें बीमार रहने की फुरसत नहीं है। मुर्ग दिल मत रो यहॉ, ऑसू बहाना है मना। जो जीवन हमें मिला है, और जो आगे हमें मिलेगा हम उसके एहसानमन्द हों। चलो नाचो, गाओ, जादू मारो मेरे रूप, मेरे शरीर मेरी जवानी, मेरी अदा। मुबारक हो ! मुबारक हो !

छोटी चम्पा भावावेष में अपने–आपसे मुजरा करती हुई जैसे अपनी किस्मत को आदाब देने के लिए झुककर सलाम करने लगी।

उसी दरवाजे पर एक अधेड़–उम्र का आदमी आ खड़ा हुआ–ऊनी पैंट, बंद गले का काला कोट और टोपी।

'आदाबर्ज ! फरमाइए !' छोटी चम्पा ने कहा।

'मैं आपकी खिदमत में आया हूँ चम्पा जान !'

ष शुक्रिया जनाब !'

दरअसल मैं अपने इसी रेलवे स्टेषन के टूरिंग डिपार्टमेंट में मैनेजर हूँ। फर्स्ट क्लास के यात्रियों के लिए जो ऊपर रिटायरिंग रूम्स बने हैं न, उनकी भी देखरेख मुझे ही करनी पड़ती है।'

'तो ? चम्पा ने तेजी से कहा।

'तो मैं आपकी खिदमत में यह दरख्वास्त करने आया हूँ कि आप यहॉ से मेरे घर चलिए, फिलहाल वहीं रहिए और रिटायरिंग रूम्स में.....।'

'चले जाओं यहॉ से' , चम्पा ने तड़पकर कहा और पलंक पर औंधी गिरकर अपने उड़ते माथे को शांत करने लगी।

दोपहर के साढ़े बारह बजे दीवान सैयांसिंह के साथ नाज सिनेगा का मालिक आया। सैयांसिंह ने कहा, 'बड़ी किस्मतवर है तू छोटी चम्पा ! देख यह तुम्हारे रहने के लिए अपने सनीमा के पीछे तीन कमरों का एक फ्लैट दे रहे हैं।'

नहीं, कभी नहीं ! चम्पा ने उनकी ओर ऑख उठाकर देखा तक नहीं।

वे चले गए।

और लोग भी आये। पर वही–नहीं, नहीं, नहीं।

अन्त में दो बजे के करीब दारोगाजी के साथ अलीमनगर के वही परिचित बंगाली बाबू आये, जिनके यहॉ बीड़ी का बहुत बड़ा कारोबार होता था, और जो अक्सर इस चम्पा की मुहब्बत में यहॉ पिछले तीन साल से आया करते थे।

'हुजूर आदाबर्ज ! फरमाइए ! मैं यहॉ से स्टेषन जाने के लिए बिल्कुल तैयार बैठी हूँ।'

'नहीं–नहीं, तुम्हें अब स्टेषन नहीं जाना होगा। यह घोष बाबू तुम्हें अपने संग लेकर जा रहे हैं।

'कहॉ ?' चम्पा ने पूछा।

घोष बाबू बोले, 'अब से तुम वेष्या नहीं रहेगा। अपनी पत्नी के माफिक हम तुमको रखेगा, हॉ। चलो हमारे संग, तुमको लेकर हम दूसरे घर में रहेगा। मालूम है न तुमको वह रेलवे इन्स्टीट्यूट के पास मेरा मकान–जहॉ मुजरा होता था.....वही.....।'

'नहीं, शुक्रिया !'

'यह क्या कहती हो तुम ?' दारोगाजी ने आष्चर्य से कहा, तुम वेष्या जीवन से मुक्ति पाकर शरीफ जिन्दगी जिओगी।'

'षरीफ जिन्दगी !' चम्पा को एक निर्जीव हॅसी आ गई।

'हॉ ! दोनों ने कहा।

'वेष्या–जीवन से मुक्ति !' चम्पा ने उद्दीप्त स्वरों में कहा, जब तक संसार में पुरूष हैं, मैं अपनी इस जिन्दगी में तब तक वेष्या हूँ, वेष्या रहूँगी ! मुझे कैसी मुक्ति ! कैसी राहत ! मैं नहीं समझ पाती लोग मुझे इतना बेवकूफ क्यों समझते हैं ? मैं इसे साफ जानती हूँ, जब तक पुरूष है, तब तक मैं वैष्या हूँ। और इसमें मुझे कोई दुःख नहीं, कोई संकोच और कोई पछतावा नहीं। मैं जहॉ हूँ, वहीं खुष हूँ, खुष रहूँगी। मेरे पॉव के नीचे यह नन्ही गीली जमीन तो है।

यह कहती–कहती चम्पा कमरे से बाहर निकलकर बारजे के सहारे टिक गई।

सराय के दरवाजे पर सरकारी बस आ खड़ी हुई। ऑगन में पी0ए0सी0 की एक टुकड़ी हाथों में बन्दूक लिए तैनात हो गई। पुलिस चौकी के सब सिपाहियों के हाथ में डंडे थे।

छोटी चम्पा के साजिन्दे–तबलादार हरिनाकष्यप महाराज, सारंगी वाले इकराम हुसैन, नियामत हुसैन, सुवैत मंजीरा बजाने वाला–ये सब ऑखों में ऑसू भरे सामने चुप खड़े थे। चम्पा को वे इस तरह नहीं जाने देना चाह रहे थे, पर मजबूर भी थे। इसीलिए चुप थे।

चम्पा ने कहा, 'अपने–अपने साज यहॉ से ले जाओ। इसे यह न समझना कि मैं आप लोगों को कोई इनाम दे रही हूँ। महज इसे मेरी याद समझना। जाओ विदा ! जाओ न ! किसकी माया में पड़े हो ?'

छोटी चम्पा की गंभीर ऑखे देखकर साजिन्दे बरामदे से नीचे उतर गए, पर सराय के ऑगन के एक किनारे खड़े हो गए। वहॉ से सहसा देखते क्या हैं कि नीचे–ऊपर की सारी गरीब रंडियॉ, बूढ़ी, बीमार, बेकाम और असहाय सब छोटी चम्पा के कमरे की ओर भागी जा रही हैं।

यह क्या हो गया ?

पी0ए0सी0 के जवान और चौकी के सिपाही भी उधर दौड़े। ऊपर से उसी बीच सैयांसिंह की आवाज आयी–कोई खास बात नहीं है। आलराइट !

छोटी चम्पा ने महज अपना होल्डाल और एक बक्स बरामदे में हटवाकर शेष अपने कमरे को लुटा दिया। उतना सामान बड़ी चम्पा का और इतना छोटी का।

चम्पा वैरागी की भॉति बारजे से झुकी हुई बाहर शून्य में न जाने कहॉ देख रही थी। पीछे उसके कमरे में जैसे उन रंडियों, असहायों द्वारा कोई जबरदस्त डाका डाला जा रहा था।

ऑधी सब बहा ले गई।

चम्पा का मन हल्का हो गया। और वह पहला मुसाफिर बस पर सीधे जाकर बैठने वाली चम्पा छोटी चम्पा ही थी, वीतराग जैसी–न उदास, न खुष, सबसे तटस्थ।

थोड़ी देर बाद चम्पा ने देखा, सराय की वे सारी रंडियॉ रो रही हैं। कोई भी अपने–आप बस में चढ़ने को तैयार नहीं है। जबरदस्ती उनके सामान बस पर रखे जा रहे हैं। वे खींच–खींचकर पी0ए0सी0 के जवानों और पुलिस कान्स्टेबल द्वारा बस में बिठाई जा रही हैं।

बस झट स्टार्ट होकर बहुत तेज गति से जाने लगती है। उसके पीछे एक ओर पगला कल्लू हाथ में टूटी रकाबी लिये हुए बहुत तेज गालियॉ देता हुआ दौड़ता है; दूसरी ओर बिग्गी चिल्लाती, हॅसती हुई नंग–धड़ंग दौड़ती है। पुलिस के जवानों की क्या हिम्मत कि आज वे उन दोनों पगलों को रोकते–टोकते ! कल्लू के हाथ में जो कुछ भी आता है, उसे वह तोड़कर बस के पीछे खींचकर हवा में मारता है। बिग्गी के मुॅह में जो कुछ भी आ रहा है, वह चिल्लाकर कह रही है–तू नामर्द है रे ! चोर है, जालिम है, खूंखार है। मुफ्त में मेरी जवानी लूटेगा। बिना पैसे का मेरा जोबन लेगा। छीः तेरे नमकहराम की ! सालों को यह खेल है, तमाषा है। एक जमाने को कत्ल कर बैठे।

आखिरी बस छूटने को हुई तो सिपाहियों ने कल्लू और बिग्गी को अपने घेरे में बॉध लिया।

प्लेटफार्म नम्बर तीन की अद्भुत दषा थी। डिब्बों में रंडियां बैठी थीं, प्रायः सब खिड़कियों पर मुॅह धरे हुए। संग–साथ उनके अभिभावक थे। बुड्ढे मॉ–बाप भी थे। लग्गू–भग्गू और संग उपजीवाएॅ भी थीं। कोई खुषहाल नहीं। सब अपनी–अपनी जगह झॉक रही थीं। हर डिब्बे में एक–एक पुलिस कांस्टेबल और पी0ए0सी0 का एक सषस्त्र जवान। डिब्बों में मैले–कुचैले सामान ! पीकदान, पानदान, तरह–तरह के हुक्के। साबुत टूटे साजबाज भी। किसी–किसी डिब्बे में दो–चार बकरियॉ। पिंजरे सहित मुर्गे। पट्टू राम राम कहो ! सुआ पढ़ावत गनिका तरि गई पता नहीं वे कैसी, किस काल की गणिका थीं ! और वे सुग्गे कैसे थे।

सब सहमी हुई अपने–अपने डिब्बों में बिठा दी गई थीं। फाटक बन्द कर दिये गये थे। प्लेटफार्म पर वहीं पी0ए0सी0 के सैनिक और पुलिस कांस्टेबल। और सारा प्लेटफार्म तरह–तरह के मनुष्यों से खचाखच ! लोग छिप–छिपकर पानों के बीड़े दे रहे थे।

दूर–दूर से लोग यह अभूतपूर्व छाप देखने आये थे। फिर भी लोग मजाक कर रहे थे। बिना पैसों का वह खेल !

इंजन के पास वाले कम्पार्टमेंट में छोटी चम्पा प्लेटफार्म के दूसरी ओर मुँह किये हुए चुप बैठी थी। उसके शरीर का सारा बुखार जैसे उसके दिल और दिमाग पर बर्फ की तरह जम गया था। वह एकटक बुझी हुई ऑखों से लोको की चिमनी का धुँआ देख रही थी। और उसे याद आ रहा था, आज से पन्द्रह साल पूर्व जब एक पुरूष के साथ, जब उसकी अवस्था शायद दस साल की थी, इसी स्टेषन पर वह आजमगढ़ की ओर से आयी थी। तब उसका नाम कॅवल था। उसे याद आ रहा है, उस समय मजदूर और कुलियों से भरी हुई एक गाड़ी इसी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। वह गाड़ी आसाम की ओर जा रही थी, लड़ाई की तैयारी में उधर मैदानों में काम करने के लिए। सारी गाड़ी के कुली गंगामैया की जै–जैकार कर रहे थे। पर आज चम्पा की वह गाड़ी चुप थी। रंडियॉ केवल निःषब्द सिसक–सिसककर रो रही थीं। और बाहर प्लेटफार्म पर खड़े हुए लोग उन्हें समझा भी नहीं पा रहे थे।

गाड़ी ने आखिरी सीटी दी।

गार्ड ने पीछे से हरी झंडी दिखाई। उसी समय प्लेटफार्म पर चिल्लाते हुए कल्लू और बिग्गी ने प्रवेष किया।

कल्लू ने चिल्लाकर कहा–मैं ड्राइवर हूँ, गाड़ी नहीं ले जाऊँगा। कोई साला मेरा क्या करेगा।

नंग–धडंग बिग्गी खिलखिलाकर हॅसती हुई लोट–पोट हो गई और हाथ उठाकर बोली, 'मैं अपने घर जाऊँगी, और उस हरामी, दगाबाज का कीमा बनाकर कुत्तों को खिलाऊँगी।' पर दोनों को सहसा सिपाहियों ने घेर लिया।

बिग्गी ने दौड़कर उन पर थूकना शुरू किया। तब गाड़ी प्लेटफार्म से छूट गई।

प्लेटफार्म पर हजारों लोग देखते खड़े रह गये। सबको चीरकर केवल कल्लू गाड़ी के पीछे दोड़ा बिग्गी भी जी तोड़कर भागी। सहसा पुलिस का एक डंडा कल्लू के दौड़ते हुए पैरों में लगा, और वह लड़खड़ा–कर वहीं गिर गया। बिग्गी चुप देखती रह गई।

और रंडीगाड़ी पूरी खैरियत से भलीभॉति गोरखपुर से रवाना हो गई।

कबीरदास का मगहर।

कठिनइया नदी के पुल पर चम्पा की जीप सहसा फेल हो गई। ड्राइवर नीचे उतरा। फिर फूल बाबू भी।

बड़ी चम्पा से न रहा गया। उसका मन बड़ा व्याकुल था।

रात के उस सन्नाटे में वह भी नीचे उतर गई, नंगे पैर। नंगी धरती की ठंड उसे कॅपा गई।

उसने कॉपते हाथ से फूल बाबू की बॉह पकड़कर कहा, 'यह लो, मेरी मॉग में अपने हाथ से सिंदूर भर दो। मैं सुहागिन हो जाऊँ।'

'ऐसी भी क्या जल्दी ?' फूल बाबू ने कहा।

'कुछ नदियों पर श्राप रहता है,' बड़ी चम्पा ने कहा, 'कि उस पर से रात में केवल सुहागिन की ही सवारी जा सकती है। यह नदी कबीरदास की है न ! उन्हीं का यह श्राप है।

दरिया माहिं हिडोलना, मेल्या कंत मचाइ, सोई नारि सुहागिनी नित प्रति झूलणा जाइ।

सो यह पुल नहीं हिंडोलना है। इस पर से केवल सुहागिन ही जा सकती है।'

फूल बाबू अवाक् रहकर चम्पा को देखने लगा। बड़ी चम्पा अपने मन–ही–मन में गुनती जा रही थी–'कबीर जे को सुन्दरी, जाणि करै विभचार, ताहि न कबहुँ आदरै प्रेम पुरूष भरतार।''

फूल बाबू ने चम्पा के हाथ से उसका सिंधौरा ले लिया जैसे ही वह उसे खोलने लगा बड़ी चम्पा ने कहा, 'सुनो, यहॉ आस–पास कोई मन्दिर–षिवाला नहीं है क्या ?

'मंदिर–षिवाला तो नहीं, वह कबीरदास की समाधि जरूर दीख रही है।'

'वही सही।' हाथ में दुर्गाजी की वही छोटी–सी मूर्ति लिए हुए नंगे पॉव बड़ी चम्पा उधर ही चल पड़ी। पीछे–पीछे फूल बाबू। बेहद कुहरा छाया हुआ था। पास ही कोई ठंड से कॉपती हुई लोमड़ी बोली–खो–खो, खो–खो।

विशाल समाधि–भवन की जैसे अभी कल ही सफेदी हुई थी– खूब धवल और स्वच्छ। पर न कहीं दीप न बाती। न फूल न अक्षत। कोई देवी न देवता। कुछ नहीं। केवल भावना, अनुभूति और सबसे ऊपर वह, जो यह सब करा रहा है।

बर्फ–जैसी नदी में झट हाथ–पैर मुॅह धोकर बड़ी चम्पा समाधि–द्वार पर मृग–जैसी खड़ी हो गई। मुग्धा! वत्सला !

फूल बाबू ने सिंधौरा में से चुटकी–भर सिंदूर लेकर चम्पा की कुआरी मॉग में भर दिया और उस क्षण उन दोनों को ऐसा लगा, जैसे शत–षत मंदिरों, ठाकुरद्वारों, षिवालों के घंटे, आरती–षंख, मंत्रोच्चार, धौंसे एक साथ गूंज उठे हों।

दोनों एक–दूसरे के अंक में बॅधे हए मंत्रमुग्ध उस अनाहद नाद को सुनने लगे–पावन अनिवर्चनीय अनाहद संगीत। सुहागिन गाओ मंगल–चार। आजु आये मोरे घर राजा राम भरतार। जा दिन पाये पिया सोई, होत अनंद परम सुख होई।

आज दिन के मैं जाऊॅ बलिहारी।

सब उपास लगे मंगल गायन !

'आज इसी वक्त मेरा नाम भी तुम बदल दो,' बड़ी चम्पा ने मुग्ध स्वर–भरे कण्ठ से कहा।

'तुम्हीं बताओं।'

'नहीं, जिसने सब–कुछ दिया, वही नाम भी देगा।'

फूल बाबू कहा, 'इस समय कोई नाम याद नहीं आ रहा है, फिर सही।'

'यह लहमा कभी नहीं आयेगा। जो भी, जैसा भी नाम दे दोगे, वही मेरे लिए बहुत बड़ा नाम होगा।'

'गंगाबेली.....।'

'बस–बस गंगाबेली मेरा नाम !' बड़ी चम्पा अभिभूत थी।

फूल बाबू ने हॅसते हुए कहा, 'मैं तो कह रहा था कि वह गंगाबेली जो पूरब में उग रहा है, वह कितना सुन्दर है ! सुबह का वह तारा गंगाबेली.....।'

'वह मेरे पुष्प का हसीन मन है।' नवजन्मा गंगाबेली ने कहा।

वह अपूर्व दुल्हन यह कहते–कहते दूल्हे का दायॉ हाथ पकड़े हुए समाधि–भवन की परिक्रमा करने लगी–सप्तपदी।

ड्राइवर ने पुल पर से उसी क्षण हॉर्न दिया। फूल बाबू अकेला खड़ा था, हैरान। नयी, बिल्कुल नवजन्मा गंगाबेली समाधि से पष्चिम कस्बे की ओर भागती चली जा रही थी।

इसे क्या हो गया ? यह कहॉ चली जा रही है ?

फिर वह ऑखों से ओझल हो गई।

फूल बाबू से न रहा गया। उसने पुकारा, गंगाबेली !'

'आयी !' उधर से उसी क्षण आवाज आयी। फूल बाबू विस्मय में खड़ा रहा। फिर उसे डर लगने लगा। तभी उसके पास दोड़ती हुई आवाज् आई–आ गई मैं !

फूल बाबू ने देखा–नवागता दुल्हन के अंचल में गेंदे के इतने फूल !

'वहॉ क्यों चली गई थीं तुम ?''

'तुम्हारे लिए यह लाने।'

यह कहते–कहते अंजुरी–भर गेंदे के पुष्प उसने फूल बाबू के चरणों पर बरसा दिए। फिर उन फूलों को वह अपने माथे, सीमंत और अपनी ऑखों में छुलाती हुई समाधि के पास जा खड़ी हुई। सारे फूल उसने समाधि पर चढ़ा दिए और नीचे माथा टेककर अपनी बेखुदी में वह बोली–मुझे अपने पर इतबार नहीं है पर हे विद्रोही, तुम मेरा अपना इतबार मुझे जरूर लौटा देना। तुमने जो मुझे एकाएक इतना दिया है, मुझे इतबार नहीं हो रहा है कि पाने वाली मैं ही हूॅ। मैं क्या हूॅ तुम्हीं जानते हो, ऊपर जो हूॅ उसे संसार ने खूब जान लिया है। पर मैं नहीं जानती मैं क्या हूॅ। केवल जिस्म रही हूॅ कि कुछ और भी हूॅ। मुझे इतबार दो। मैं इतबार करना चाहती हूॅ।

फूल बाबू ने कन्धा पकड़ कर कॉपती हुई गंगाबेली को उठा लिया। उसकी ऑखें ऑसुओं से तर थीं।

'तुम भी माथा टेक लो।'

'यह मुझसे नहीं होगा। चलो अब बहुत देर हो रही है।'

हॉर्न की आवाज रह–रहकर सन्नाटे को चीर रही थी।

जीप स्टार्ट होकर खड़ी थी। उसमें बैठते हुए गंगाबेली ने हाथ जोड़कर सिर झुका लिया–ईष्वर मुझे विष्वास दो। मैं विष्वास करना चाहती हूॅ। ईष्वर तुम हो तो इतना भय क्यों ? हे ईष्वर, तुम मुझे जानो। मैं अपने को नहीं जानती.....।

और गंगाबेली की जीप चली गई।

पृथ्वी धॅस गई थी। जिसे वहॉ चन्द्र फटना कहते थे। बखिरा ताल वहीं है। पूरे एक मील का लम्बा–चौड़ा तालाब। पष्चिम ओर नया बखिरा का कस्बा। तालाब के दक्षिणी तट पर फूल बाबू का गॉव देईपारा और अनेक गॉव। उस पर उत्तर के किनारे माहनपारा।

फूल बाबू जाति का ठाकुर है। पर गॉव में अधिक घर ब्राहम्णों के हैं। आधे लोग शुकुल और आधे तिवारी। गॉव के पष्चिम दुर्गाजी का एक पुराना मंदिर है। पूरब में, बाग के इस पार काली का स्थान है। ये दोनों स्थान फूल बाबू के बाबा के बनवाये हुए हैं।

देईपारा, खुसिया, जीतनाथ, निनिया और सलामतचक, ये पॉच गॉव बाबा के पिता को सन सत्तावन की क्रान्ति में अंग्रेजों से बहादुरी के इनाम में मिले थे, पूरी माफी में। बाबा के पिता को सरकार को एक पैसा भी मालगुजारी नहीं देनी पड़ती थी। और इसी तरह न बाबा को, न फूल बाबू के पिता पृथ्वीराज सिंह को।

जमीदारी टूटने से एक महीना पूर्व पृथ्वीराज सिंह का देहान्त हुआ था। पर वे अपने दोनों पुत्र फूल बाबू और छोटे लड़के राजा बाबू के लिए पॉचों गॉवों में चालीस–चालीस बीघे की बनी–बनाई सीर छोड़ गए थे।

देईपारा में ठाकुर की वह बाखरी अब भी खलीलाबाद बखिरा सड़क से सफेद ऊॅची दीख पड़ती है।

पर वैसी स्थिति अब नहीं है। न वह रोबदाब, न वह प्रताप, पर इज्जत अब भी है। ठकुरी मॉ जीवित हैं।

राजा बाबू स्वयं घर का कामकाज देखते हैं। विधवा ठकुरी मॉ की अवस्था पचास साल से ज्यादा नहीं है। पर वृद्ध लगती हैं और बाहर बरामदे में बैठी हुई दरवाजे का काम–धाम देखती हैं। आठ हलवाहों की जगह अब तीन हलवाहे हैं।

घर में राजा बाबू की पत्नी धानी वाली है, और एक नौकरानी है, मेंहदिया, यही चौदह साल की उमर वाली।

दो घंटा दिन चढ़ते–चढ़ते देईपारा में शोर मच गया कि फूल बाबू मोटर में बिठाकर एक बहुत सुन्दर औरत ला रहे हैं। मेम है मेम। औरत बच्चे, जवान, बूढ़े सब ठाकुर के दरवाजे पर इकट्ठे हो गए। जीप घिर गई भोले–भाले तमाषबीनों से।

गंगाबेली ने मुख पर ऑचल का थोड़ा–सा घूॅघट कर लिया था।

फूल बाबू ने दरवाजे पर बढ़ कर मॉ के चरण छुए।

'मॉ, बहू ले आया हूॅ।

'तो घर में ले चल न ! मॉ ने गद्‌गद् होकर कहा।

फूल बाबू मुड़कर नीचे उतरने लगा कि मॉ ने पुकारकर कहा–'रूको, रूको। बहू ऐसे घर में न आयेगी। धानीवाली ! ओरे धानीवाली !

दरवाजे से धानीवाली को भीतर ले जाकर मां ने कहा–'सूप में परछने का सब सामान रखकर चल, झट परछ ले !'

दरवाजे के दोनों ओर गॉव की स्त्रियॉ मेले की तरह जमा थीं। नाइन ने दौड़ कर नीचे से देहरी तक झटाझट कई चौक पूर दिए। कहारिन ने दुल्हन के अंचले से फूलबाबू के रूमाल की गांठ बॉध दी।

ठाकुरी मॉ ने दो मुट्‌ठी पैसा जीप के ऊपर बरसा दिया। औरतें मंगल गा उठीं–

'परछन करहिं चलैं बड़ कामिन
चलैं बड़ कामिन

सखि दस गोहने लाये।
दस सखि आगे दस सखि पाछे
सब सखि मंगल गाये।

धानीवाली ने परछन किया। बहू जब देहरी के अन्दर चली गई तब पीछे–पीछे ठकुरी मॉ अन्दर गयी।

फूल बाबू बड़ी चम्पा को प्रारम्भ में ही बता चुका था कि उसकी शादी हुई है। स्त्री उसके यहॉ नहीं रहती। अब यहॉ आकर उसे दूसरे दिन ही पता चला कि फूल बाबू की स्त्री खुसिया गॉव की सीर की मालकिन रहकर ससुर के बनवाये हुए घर में रहती है। साथ में दस साल का लड़का है। नैहर की एक महराजिन है साथ में, भोजन–पानी के लिए।

धानीवाली देवरानी ने बताया कि बड़ी जीजी शंकर भगवान की बहुत बड़ी पुजारिन हैं। दरवाजे पर षिवाजी का छोटा–सा मन्दिर है। उसी में दिन–रात पूजा करती रहती हैं। देईपारा में पिछले तीन साल से कभी नहीं आयी हैं। दरवाजे पर साधू–सन्त टिकाती हैं और उनके साथ सतसंग करती हैं।

किसी–न–किसी इत्तर से गॉव जवार के प्रायः सब लोग यह बहुत पहले से जानते थे कि फूल बाबू की गोरखपुर में किसी लड़की से मुहब्बत है। कुछ लोग समझते थे कि वह प्रेमिका कोई ईसाई लड़की है। कुछ लोगों का विष्वास था कि कोई उसी कॉलेज की ही लड़की है, जिसके प्रेम पाष में फूल बाबू बॅधे हुए हैं। लोगों के और भी अलग–अलग विष्वास थे।

पर फूल बाबू की इस नयी दुल्हन को देखकर गॉव की औरतें कुछ न निर्णय कर पाईं कि दुल्हन क्या है। दुल्हन सुन्दर है, बहुत सुन्दर है। रंग इतना गोरा है कि शरीर को हाथ से छू दो, तो दाग पड़ जाए। अवस्था जरूर ज्यादा है। चौबीस–पच्चीस साल से कम नहीं है। दुल्हन का भाव–व्यवहार भी अच्छा है। जो उसे देखने जाता है, सबके वह पॉव छूती है। गाना तो ऐसे गाती है, जैसे कोयल की बोल, वन के पात–पात में जैसे रइन डोलै।

औरतों ने सिर्फ यही निष्कर्ष निकाला कि फूल बाबू ने गोरखपुर में कहीं प्रेम–विवाह किया है। पुरूषों ने भी इसी भावना का समर्थन किया। ठकुरी मॉ दुल्हन को पाकर बहुत प्रसन्न थीं। उन्होंने फूल बाबू से केवल इतना ही पूछा था कि वह वही बहू है, जिसे तुम चाहते थे ?

'हॉ मॉ, यह वही है।'

फूल बाबू के इस उत्तर के बाद ठकुरी मॉ ने आगे कुछ न पूछा। पुत्र और दुल्हन को भरी ऑख से यह आर्षीवाद दिया–'यस रे जियहु जैसे धरती के धान, यस बिलसहु जैस रइनी के चान।'

फिर भी देईपारा की औरतों को बिना यह जाने कि दुल्हन का असली नैहर, जात–पॉत, हित–सम्बन्ध क्या है, उनका भोजन नहीं पच रहा था। ठकुरी मॉ का गॉव–भर पर इतना दबाव था कि उनके सामने कोई भी औरत दुल्हन से ये प्रष्न नहीं कर सकती थी। उन्होंने उस दिन ऑगन में भरी औरतों के बीच साफ कहा था कि मेरे फूलन की दुल्हन है, और क्या, बस इसके आगे और कुछ नहीं।

पर औरतें तरह–तरह के बहाने से ठकुरी मॉ के घर में घुस जातीं और दुल्हन से बोल–बुलौनी करतीं–'बहू को अपने नैहर की बड़ी याद आती होगी। मॉ–बाप–भाई वीरन। क्यों बहू, मैं ठीक कह रही हूँ न ! क्यों बहू, बोलो न, कितने भाई–बहन हैं तुम्हारे ? कितनी दूर है तुम्हारा नैहर ?

दुल्हन से निरूत्तर होकर औरतें छोटी बहु, धानीवाली से दुल्हन को सुना–सुनाकर बातें करतीं कि नैहर कैसा भी हो, बड़ी याद आती है, क्यों धानीवाली, ठीक कह रही हूँ न !

कि दुल्हन बड़ी सीधी है, फिर भी मॉ–भाई ने अब तक सुध न ली।

कि फूल बाबू की पहली औरत को इस नयी दुल्हन के आने की खबर उसी दिन पहुॅच गई थी।

सुना है, उन्होंने षिवजी के मन्दिर पर अगले चौबीस घंटे तक निराजल उपवासकर अखंड षिवकीर्तन कराया था। कैसे–भी हो, कुछ–भी हो बहू ! सौत ही है। क्यों धानीवाली, भला मैं कुछ झूठ कह रही हूँ ?

एक हफ्ते बाद गॉव वालों को इसका भी पता हो गया कि फूल बाबू अब गॉव ही रहेगें। गोरखपुर में वकालत की पढ़ाई का जो बहाना था, वह तो अब मिल ही गया।

क्वार बीतते–बीतते बखिराताल में, वहॉ के स्थानीय पखेरू कौंच दम्पति, चाहा, बगुला, परेवा, सोनपंखी, गंगाकुररी, बन–मुर्गियॉ और कोयली के अतिरिक्त उत्तर और दक्षिण से असंख्य परिन्दे लालसर, अकासहंसा, धोलाबकुल, सारस और सोनापतारी झुण्ड–के–झुण्ड आते हैं। और यहॉ कार्तिक से लेकन अगहन,

पूस, माघ और फागुन तक बड़े प्यार से इस सुन्दरी उदार और गम्भीर झील में शीतकाल का चौमासा बिताकर अपने–अपने देष चले जाते हैं।

उस बखिरा झील में ज्यादातर ये मेहमान परिन्दे देईपारा गॉव की ही ओर झील–तट पर रहते हैं। लालसर और अकासहंसे बड़े नियम से सूरज निकलने से पूर्व झील पर आते हैं और सूरज के डूबते ही न जाने कहॉ रात बसने के लिए त्रिकोण गति में उड़ जाते हैं। किन्तु धोलाबकुल और सोनापतारी तट के पीपल और नीम के वृक्षों पर रात गुजारते हैं। और सारस लोग देईपारा गॉव के बीचों–बीच बरगद के वृक्ष पर ही बैठते हैं, कहीं अन्यत्र नहीं। परिन्दों को मालूम था कि देईपारा के ब्राम्हण लोग उनकी सदा रक्षा करते हैं। उनके जानते हुए उन परिन्दों पर न किसी ॲग्रेज ने कभी गोली चलाई थी, न बस्ती मेंहदावल और धानी के राजा बाबू लोग ही वहॉ कभी षिकार खेल सके थे।

फिर एक घंटा दिन शेष था। फूल बाबू गंगाबेली को साथ लिये हुए झील की ओर टहलने गए। गॉव की तमाम औरतें अपने दरवाजों पर खड़ी हुई उन्हें झील की ओर जाते निहारने लगीं थीं। हाय, कैसा सुन्दर जोड़ा है ! कितना प्रेम है ! पति–पत्नी सदा–साथ ! हाय कैसी तपस्या है इस दुल्हन की ! गॉव की ब्राहम्ण–वधुऍं उन्हें उस तरह साथ जाते देखकर ललचा उठी थीं। उन्होंने अब तक देखा था, जाना था और सिर्फ यही विष्वास था कि पति–पत्नी का आदर्ष जोड़ा क्रौंच पक्षी का है, हर क्षण दोनों एक साथ, एक गति। आज उन्हें अनुभव हुआ पुरूष और स्त्री भी क्रौंच का वही जोड़ा है।

गंगाबेली अपार गहरी झील को देखती रह गई। इतना पानी ! ऐसा अद्‌भुत नीला रंग और चारों इतना निर्मल साफ, धुला हुआ क्षितिज।

फूल बाबू ने बताया कि झील के उस पार वह बड़ा–सा गॉव माहनपारा है। उससे पॉच कोस सीधे उत्तर दिषा में राप्ती नदी है–वही गोरखपुर वाली नदी। और राप्ती से उस पार नौतनवॉ है, सोलह कोस दूर। फिर वहीं रोमीदेवी का स्थान है, जिसे गौतमबुद्ध की माता कहते हैं। उसके पार लट्‌ठा खॉसिया है, जिसके पार से नेपाल राज शुरू हो जाता है। फिर हिमालय और धौलगिरि। जै पषुपतिनाथ ! जै गौरापार्वती !

दोनों झील के किनारे–किनारे पूरब दिषा की ओर बढ़ते गए।

'यह अपना खसिया गांव है और वह है जोगनाथ गॉव।'

गंगाबेली ने पूछा–'उसी में, सुना है तुम्हारी पहली पत्नी रहती है।'

'हॉ, रहती तो हैं, तुमसे किसने कहा ?' फूल बाबू ने पूछा !

'धानीवाली बहू ने बताया है, फिर गॉव की सारी औरतों ने कहा है।'

'ठीक कहा है। और भी कुछ बताया है ?' फूल बाबू ने पूछा।

'नहीं और कुछ नहीं।'

दोनों चुपचाप झील के किनारे–किनारे चलते जा रहे थे। सूरज के डूबने में थोड़ी ही देर थी। झील का नीला गम्भीर पानी दूर किनारे स्वर्णिम होने लगा था।

सोनपंखी और गंगाकुररी ये दोनों पक्षी बहुत तेजी से आसमान से झील के पानी में गोता मार–मार कर छोटी मछलियों के षिकार कर रही थीं।

खसिया गॉव के परे झील के तल पर पॉच गाती हुई औरतें बढ़ रही थीं–

'अंचरन सुरूज मनैबै तनै गुरूबाबा कैं पइबै।

–गुरूबाबा कि 'अपने राजा कैं पइबै।

एकतारा ने मधुर मुस्कान से कहा।

चलो, अब यहॉ से लौट चलो ! फूल बाबू ने कहा।

उन औरतों को गंगाबेली और नजदीक से देखना चाह रही थी। बड़ा कौतूहल था उसके आसपास। आगे–आगे गीत छेरती हुई औरत सिर पर पल्लव और जलते हई दीये से सुसज्जित मंगल–घट था। पीछे चारों औरतों के हाथ में मूज की नयी डालियॉ थीं, अक्षत और बेलपत्र से परिपूरित। और हर डलिया पर एक–एक दीया जल रहा था।

औरतें पास आकर सहसा रूक गईं। उनका गीत भी टूट गया। अगली औरत ने फूल बाबू से कहा–

'राउर, अपन मेहरारू सहित हमारे रास्ते से हट जाऍं।'

'रस्ता काटकर उधर से तुम लोग जा सकते हो।' फूल बाबू ने कहा।

'रास्ता कैसे काटेगा !' औरतें अपनी जगह अडिग थीं।

फूल बाबू ने कहा–'यह मेरी आज्ञा है।'

औरतों ने उत्तर दिया–'राउर आज्ञा देईपारा में ही चलेगी। यह जोगनाथ गॉव है। यहॉ बड़ी बबुनीजी की आज्ञा चलती है।'

'बड़ी बबुनीजी ! बड़ी बबुनीजी कौन ?' गंगाबेली ने पूछा।'

'मेरी वही पत्नी !' फूल बाबू ने धीरे से कहा। पर औरतों ने सब सुन लिया।

'राउर हट जाएँ, इन्हें लेकर, हमें देर हो रही है।' अगली औरत ने इस बार बहुत गम्भीरता से कहा।

'आखिर क्यों, तुम लोग बगल से नहीं जा सकतीं क्या ?' फूल बाबू ने कुछ कड़े स्वर में कहा।

'नहीं, नहीं रंडी पतुरिया की छाया में से यह षिवजी का पूजन झील में नहीं जायेगा।'

'क्या कहा ?' फूल बाबू आवेष में झपटे कि वह सारा मंगल–घट, पूजन–विसर्जन एक ही चपेट में जमीन पर आ जाए, पर गंगाबेली ने दोड़कर सॅभाल लिया।

औरतें धर्महठ और से ऊपर से नारीहठ में वहीं–की–वहीं खड़ी थीं। गंगाबेली का हाथ पकड़े फूल बाबू भी वहीं खड़े थे।

गॉव की ओर से एकाएक डोली दिखाई पड़ी। तेज कदमों से कहार इधर ही डोली उठाये आ रहे थे।

बड़ी बबुनजी !

तेज झटके से डोली सामने उतर गई। बबुनजी बाहर निकलीं। सफेद साड़ी। गले में रूद्राक्ष की माला। माथे पर भभूत का टीका। खूब भरा हुआ वजनी शरीर। गहरा सॉवला रंग। कर्कष तेज स्वर, पुरूष जैसा।

'चलों तुम लोग, मैं देखती हूँ। जै षिवषंकर !

औरतें सीधे रास्ते से झील की ओर बढ़ी फूल बाबू गंगाबेली का हाथ पकड़े खड़े देखते रहे।

'ऐसी सौत के दर्षन कराने आये हो ?'

फूल बाबू मौन ! गंगाबेजी बबुनी को अपलक निहारती रह गई।

'मेरी और देखोगी तो भस्म हो जाओगी। सती का तेज है, सावधान !'

गंगाबेली के दोनों हाथ प्रणाम में अनायास ही उठ गये। फूल बाबू ने उसके जुड़े हाथों को अपनी ओर खींच लिया।

'चलो यहॉ से।'

'ठहरो !' बबुनी ने आगे बढ़कर कहा–'मुझे मालूम है, तुम कौन हो !

गोरखपुर के एक व्यक्ति ने मुझे उसी दिन बताया था कि तुम पतिता हो ! मुझे मालूम है तुम किस विष्वास से यहॉ आयी हो !'

'यह मेरी पत्नी है, यही इसका विष्वास है।' फूल ने कहा।

'पत्नी तो मैं भी थी। पर वह विष्वास कहॉ गया ? तुम्हारा विष्वास तुम्हारा पतित रूप और अषुभ शरीर है। पर समझ लेना, यह शरीर ही तुम्हें धोखा देगा। अच्छा हुआ, इस तरह जल्द तुमसे भेंट हो गई। याद रखना, अधिकार छीनने वाला, कभी वह अधिकार नहीं पाता। मेरा पति ईष्वर है, तुम्हारा पति वह शरीर है। जाओ मुबारक हो तुम्हें ! मैं श्राप नहीं देती, मैं हृतसर्वस्वा हूँ तो क्या ? मेरे पति शंकर भगवान् हैं।'

'अभी कुछ और श्राप देना बाकी है क्या ?' फूल बाबू ने कड़े स्वर में कहा–'तुम–जैसी औरत के लिए पति कुछ नहीं है, कभी भी कुछ नहीं रहा। ठीक है, मेरी यह पत्नी पतित है, पर यह स्त्री तो है। तुम्हारा वह पत्थर का टुकड़ा तुम्हें मुबारक हो, जिसे तुमने जन्म से ही अपना पति माना है। जब मुझे तुम्हारे पति से ईर्ष्या नहीं, तो तुम्हें मेरी पत्नी से यह ईर्ष्या क्यो ? तुम षिव–पत्नी हो न ! षिव–पत्नी की करूणा और ममता विषेषकर नारी जाति से कितनी अपार रही है, इसे तुम जानती होगी, खैर.....।'

'झूठ है, झूठ है यह ! मेरे पति तुम हो ! शंकर भगवान् मेरे ईष्वर हैं।' बबुनी के सूखे कण्ठ में जैसे कोई चीख पड़ा।

फूल बाबू गंगाबेली को साथ लिये हुए पष्चिम दिषा की ओर बढ़ रहा था।

बबुनी ने तेज सिसकियों के बीच फिर भी कहा–'जाओ, मैं तुम्हें यहॉ देखने आयी थी। मैं देखूँगी तुम लोगों को कि मेरे शंकर भगवान्.....'

झील के किनारे औरतें विसर्जन कर चुकीं, किन्तु बबुनीजी वहॉ अपनी जगह निष्चल खड़ी थीं।

देईपारा गॉव के पीछे उस दिन का सूरज डूबा था। उसकी अन्तिम किरणें झील के शांत नीले पानी के स्पर्ष से जैसे अपने थके मुख को धो रही थीं।

माहनपारा की ओर बन्दूक का फायर हुआ। गोली की आवाज जैसे झील की शांत आत्मा को बेधती हुई आर–पार हो गयी। सूरखाब का झुण्ड चिल्लाता हुआ उड़ गया। क्रौंच–दम्पति गरदन उठा–उठाकर पूरी झील की सोनपंखी सतह को निहारने लगा।

और झील के प्रायः सारे परिन्दे उड़ गए। वह सामने का सारस जोड़ा भी बोलकर उड़ गया।

औरतों से घिरी हुई बबुनीजी किन्तु वहीं अब तक खड़ी रहीं।

गोरखपुर से डोमिनगढ़। इस पहले स्टेषन के पास गाड़ी पहुॅच ही रही थी–रण्डी गाड़ी। इर्द–गिर्द शोर मच गया था। लोग छतों पर, खिड़कियों पर, खेतों से और लाइन के पत्थरों पर खड़े हुए इस गाड़ी को देख रहे थे। जैसे लोगों की इस तरह देखने की आदत पड़ गई है।

द्वितीय महायुद्ध में जब अमरीकी सिपाहियों की पलटन इसी तरह गाड़ी से चली थी, तब भी इन लोगों ने उन्हें देखा है। वे औरतों और लड़कियों के आगे झपाझप नोट फेंक देते थे–चिल्लाते थे, स्वीटी, आई लव यू डार्लिंग। बीबी.....ओ बीबी ! और नंगी–नगी तस्वीरें।

इससे पूर्व जब लखनऊ से लाट साहब की स्पेषल गाड़ी चलती थी। लाइन के दोनों ओर पुलिस पहरा ! तब भी ये लोग अनायास ही हाथ जोड़े लाट साहब के दर्षन के लिए उसी तरह घंटों खड़े रहते थे।

और इससे भी बहुत दिन पहले, शायद सोलह सौ ईस्वी के प्रारम्भ में भी ये लोग इसी तरह खड़े देख रहे थे, जब मुसलमानों की फौज पहली बार इधर से गुजर रही थी। उस समय यह सारा गोरखपुर जंगल था। बीचों–बीच सॉप की तरह बल खाती हुई यह राप्ती नदी बहती थी। उत्तर और सिर्फ वही एक नाथ–मन्दिर था, और उसके आस–पास थोड़ी–सी बस्ती थी। यही था पुराना गोरखपुर। नहीं–नहीं, गोरखनाथ।

पर फौज का कैम्प इसी जंगल में पड़ा। सारा जंगल काटकर इस भूमि को नयी संज्ञा दी गई, लष्कर। फिर फौज की रसद के लिए यहॉ गौऍं कटने को हुईं और तभी नाथ और जोगियों ने संगठन कर गौ काटने वालों का विरोध किया। जमकर लड़ाई हुई। कहॉ साधु–वैरागी, कहॉ फौज के सिपाही ! सारे जोगियों का खून हो गया, और तब वहॉ पहली मुसलमान बस्ती बसायी गई, उसका नाम पड़ा खूनीपुर। फिर वहॉ काजी आये, छोटे काजी और बूढ़े काजी भी। मियॉ आये, तुर्क आये, अल्ला–इलाही आये। और क्रमषः उनके मुहल्ले बने, बड़ा काजीपुर, छोटा काजीपुर, मियॉ बाजार, तुर्कमानपुर, इलाहाबाग और। मिसाफिरों, राहगीरों के लिए तभी उतनी बड़ी सराय बनी। इसके बाद जब अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति में उसी डोमिनगढ़ के पास कवलदह की विधवा क्षत्राणी कौलापतिरानी ने अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध की घोषणा की, उस क्रान्ति–युद्ध में यहॉ के मुसलमानों ने अंग्रेजों का खुलकर साथ दिया। हिन्दू निर्मूल कर दिये गए और मुसलमान रईस बन गए। रईस मुसलमान के लिए 'बहार' चाहिए बसन्त। तभी से वह सराय बसंतपुर।

वही उजड़े दयाल का बसंतपुर उस गाड़ी में बैठा हुआ आज डोमिनगढ़ स्टेषन पर रूक गया।

'जै असुरेन पोखरा !

रानी कौलापति !'

एक वृद्ध साधु चिमटा बजाता हुआ ट्रेन के सामने घूमने लगा।

उस ट्रेन वालियों को हुक्म था, डोमिनगढ़ चूॅकि गोरखपुर शहर की सीमा का पहला स्टेषन है, इसलिए उस स्टेषन पर कोई नहीं रूक सकता।

फिर ट्रेन क्यों रूकी ?

वह तो रेलवे का नियम है।

डोमिनगढ़ के बाद जगतबेला।

बीचों–बीच दो–तीन कम्पार्टमेण्ट की दिलरूबाऍं एक साथ ट्रेन से प्लेटफार्म पर उतर गईं। बिजली की रोषनी से प्लेटफार्म जगमगा रहा था। पर क्या पता, जगतबेला कैसी जगह है ! कैसा भाव है, कैसे लोग हैं ! कुछ भी तो नहीं पता।

पर हॉ, रात तो है, ये रातरानी।

एक बात और भी है, जगतबेला से गोरखपुर बहुत दूर नहीं है। ये लोग किसी–न–किसी तरह राप्ती नदी की ओर से कल–परसों तक फिर गोरखपुर पहुँच जाएँगी। न सही बसंतपुर। जहाँ ही मुस्करा दिया, जहाँ वह जुल्मी नैना मारा, वह शेख, विजयिनी आँखों से चकित कटाक्ष से पारों को बुलाया, वहीं बहार आ जाएगी, वहीं बसंतपुर, वहीं बहारपुर।

यही हाल आगे सहजनवाँ स्टेषन पर हुआ। वैसे ही मगजर में, और सबसे अधिक खलीलाबाद स्टेषन पर। करीब आधी गाड़ी खाली हो गई। उस रात उन सब स्टेषनों के कुली ऊँचे–ऊँचे स्वरों में फाग की कोई–न–कोई पंक्ति गा रहे थे। स्टेषनों के मालिक और बाबू लोग भी खूब खुष थे। गाड़ी ड्राइवर, फायरमैन, खलासी, सब लोगों के ओठों पर फिल्मी गाने उभर रहे थे।

छोटी चम्पा चुपचाप सीट पर बैठी हुई बैरागी की तरह सब देख–सुन रही थी।

खलीलाबाद स्टेषन से जब गाड़ी खुलने को हुई तब किसी ने स्टेषन के टिकट बाबू से पूछा–'बड़े बाबू। इस अँधेरी रात में, बिना किसी ठौर–ठिकाना और रास्ता पता के यह बेचारी कहाँ जायेंगी भला ?' इस प्रष्न के उत्तर में जवाब देने वाले की केवल हँसी फूटी। पर यह प्रष्न छोटी चम्पा के सामने जैसे षिषु–षरीर धारण कर आ खड़ा हुआ !

छोटी चम्पा को हँसी आ गई।

सुनो, इस संसार में किसी को भी क्या पता कि वह कहाँ से आया है और वह कहाँ जा रहा है। न कोई यहाँ अपनी खुषी से आया है न जाता ही है। पर आना सबको है। मैं समझती हूँ, यह जिन्दगी नहीं है। हम पर यह किसी का बेरहम मजाक है। पर मैं समझती हूँ यह जिन्दगी ही उलटकर, उस मजाक का उत्तर भी है। मैं जवान हूँ, खूबसूरत हूँ। आ, क्या करेगा तू , पर मुझे क्या.....

छोटी चम्पा को अब भी थोड़ा–थोड़ा बुखार था। पर शरीर में न जाने कहाँ से बड़ी ताकत वह अनुभव कर रही थी।

वह कहीं गुमनाम जगह पर जा रही है, उसे बहुत अच्छा लग रहा है, जीवन मय।

खलीलाबाद के आगे चुरेब भारत रेलवे का शायद सबसे छोटा स्टेषन है। पैसेंजर यहाँ सिर्फ रूकने के नाम पर रूकती हैं, और तत्काल खुल जाती है। मिगछी–जैसा स्टेषन। न प्लेटफार्म न रोषनी। केवल एक बाबू, एक हाथ में हरी झण्डी लिये, दूसरे हाथ में लालटेन थामे राम–राम कह उठता है। बस। न मुसाफिर न कुली।

छोटी चम्पा एकाएक वहीं उतर गई। न किसी ने देखा न जाना।

जब गाड़ी चली गई। तब बाबू ने बड़े आष्चर्य से उसे देखा और डर गया।

'आप यहाँ क्यों उतर गईं ?'

छोटी चम्पा कुछ न बोली। रात के उस निविड़ अंधकारी और निर्जन शुन्यता को वह देखती रह गई।

'आप इस तरह अकेली है ?

'हाँ !'

'कहाँ जाना है ?'

'जाना है !'

'कहाँ ?'

पता नहीं !'

सुबह होने को थी। स्टेषन के पीछे शीषम के पेड़ पर श्यामा चिड़िया चहचहाकर गाने लगी।

मुंडेरवा की चीनी मील पर ऊख बेचकर एक बैलगाड़ी पास से जा रही थी। गाड़ीवान उस तेज ठंड में फटी कथरी में सिर से पैर तक घुटरी–मुटरी मारे सो रहा था। बैल पेषाब करते हुए वहाँ सहसा खड़ा हो गए थे।

चम्पा का शरीर बिल्कुल स्वस्थ था। झट उसने अपना बक्स उस गाड़ी पर रख दिया, ऊपर से होल्डाल भी। और चुपके खूब सँभलकर वह बैलगाड़ी के बीचों–बीच बैठ गई !

फिर बैल स्वभावतः अपने–आप चल पड़े। उसे लगा, जैसे कोई अपनी मोटर लिए स्टेषन पर उसे 'रिसीव'करने आया हो।

और उसे हँसी आ गई !

सूरज निकलने को हुआ, तो उसने शाल को गाड़ी के दोनों बाँसों में फँसाकर अपने चारों ओर परदा कर लिया, जैसे कोई दुल्हन विदा होकर जा रही हो।

फिर न जाने कब उसे नींद आ गई !

चुरबे से दो मील पूरब की ओर जाकर उन सधे हुए बैलों ने सेमराह गिमती से रेलवे लाइन पार की, और वह बैलगाड़ी सीधे उत्तर की ओर बढ़ी। पूरे ढाई कोस उत्तर जाकर एक गॉव मिला, महतोसाई। फिर उसी गॉव का एक पुरवा मिला, चमरटोलिया। उसे पार कर दो महुए के पेड़ों के नीचे एक, केवल एक छान–छप्पर का घर मिला। मिट्टी की दीवार और ताल की चिकनी मिट्टी से पुती हुई।

बैलगाड़ी को देखते ही घर में से दो कुत्ते बेतरह पूँछ हिलाते हुए दौड़े। सधे हुए बैल दरवाजे पर आ खड़े हुए।

गाड़ी का मालिक अब तक सो रहा था। कुत्ते मालिक को जगाने के लिए चॉव–चॉव करके भौंकने लगे। गाड़ीवान की नींद टूटी। ओढ़ी हुई कथरी को हटाते हुए वह झट बैलगाड़ी से नीचे कूद पड़ा। तब उसने आष्चर्य से देखा कि उसकी बैलगाड़ी पर वह क्या है !

कहीं उसकी बैलगाड़ी बदल तो नहीं गई है। पर गाड़ी तो उसी की है।

ऑख मलते हुए वह गाड़ी के पीछे गया। देखा, चमरटोलिया के कई बच्चे गाड़ी के पीछे खड़े हैं। अरे भगवान यह क्या है ?

यह तो कोई स्त्री है भगवान। किसी बड़े घर की स्त्री, उतना बड़ा बक्सा, और वह बॅधा हुआ गट्ठर ! बैल कंधे के जुए से अलग हटने के लिए छटछटा रहे थे। बच्चे अलग आतुर खड़े थे, गाड़ी की दुल्हन को देखते हुए।

हाय राम, यह क्या हो गया ?

महावीर जी, सिवान गोसाईं यह क्या है ? कैसे जगाऊँ, कैसे छुऊँ इसे !

छोटी चम्पा उस नंगी गाड़ी पर धूल–धूसरित जैसे युगों की नींद पूरी कर रही थी।

गाड़ीवान ने सोचा, गाड़ी को उस छतनार महुए के नीचे खड़ा कर दूं।

जुए को पकड़कर वह जल्दी से गाड़ी मोड़ने लगा। बैलों ने बेसब्री में जुए से सहसा कंधा हटा लिया। जुआ तेजी से नीचे गिरने को हुआ कि **किमाल** ने उसे अपने बाहुओं से रोक लिया। पर उस तेज हिचकोले से छोटी चम्पा जाग गई। सिर उठाया तो देखा, गाड़ी मालिक जुए को हाथ में सॅभाले हुए बड़ी दयनीय स्थिति में खड़ा है।

चम्पा नीचे उतरी। गाड़ीवान हाथ जोड़े, विनय से सिर झुकाये हुए सामने खड़ा है।

'महाराज, मेरी भूल–चूक माफ हो ! धर्मावतार आप.....।'

चम्पा को अपने कपड़े, पूरे शरीर से धूल झाड़ना बिसर गया। मुख पर से झुके बिखरे बालों को हटाती हुई बोली–'मैं खुद यहॉ आयी हूँ।'

गाड़ीवान बेचारे को कुछ भी नहीं सूझ रहा था। पैर उसके कॉप रहे थे, और वह दाएँ–बाएँ झॉक रहा था। गॉव के बच्चे पास गोलाई में खड़े हुए अपलक चम्पा को देख रहे थे। चम्पा गाड़ी पर चढ़ अपना सामान उतारने को हुई कि गाड़ीवान हताष चिल्ला उठा–नहीं,–नहीं, सरकार नहीं।

और उसने सामान नीचे उतार लिया।

चम्पा के पॉव को दोनों कुत्ते अद्भुत प्यार से चाटने लगे। उस स्पर्ष से चम्पा की ऑखे भर आईं। उसने नीचे बैठकर दोनों कुत्तों को अपनी बॉहों में भर लिया। गॉव के बच्चों की हिम्मत बॅध गई। वे बहुत पास चले आए। चम्पा ने देखा उन बच्चों की ऑखे जैसे बादल के नये टुकड़े हों। उनका नंग–धड़ंग, धूल–धूसरित शरीर जैसे कमल की नाल हो। एक ही बॉह में उसने सब बच्चों को छू लिया तब तक उसने देखा, वह झोपड़ी का मालिक अंजुरी में गुड़ लिये हुए सामने आ गया।

धर्मावतार, यह गुड़ इन बच्चों को अपने हाथ से बॉट दीजिए।'

किन्तु बच्चे गुड़ पाकर वहॉ से गये नहीं, बल्कि सामने महुए के नीचे बैठकर और भी निहारने लगे।

झटपट भीतर से एक नयी बुनी हुई चारपाई लाकर उसने दरवाजे पर बिछा दी।

'सरकार बैठें !'

फिर बिजली की तरह दौड़कर वह कुएं से पानी भर लाया और थाली में पानी भरकर वह खाट के पास आया और चम्पा का पैर पकड़कर वह उसे थाली में धोने चला।

चम्पा कॉपकर उठ गई–'नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं। भला मेरा पैर क्यों छुआ ?'

बच्चे फिर पास चले आये थे।

'सरकार, मेरा नाम सुरेमन है। मैं जात का अहीर हूँ। मेरा घर पहले उस बड़े गॉव, महतोसॉई में था, मेरे दादा चालीस बीघे खेत छोड़कर मरे थे। दूसरे साल हैजा की बीमारी में मेरे बड़े भाई चइत्तर और माई का स्वर्गवास एक ही दिन हो गया। तब मैं कुल दस साल का था। संग मेरे एक बहन थी, मुझसे बड़ी। फुलवा नाम था उसका। विवाह हो चुका था उसका। बेचारी कुऍ में कूदकर मर गई।

'ऐसा क्यों सुरेमन ?'

'क्या बताऊँ धर्मावतार ! गॉव में पांडे लोग हैं न ! किसी ने फुसलाकर एक दिन उसकी इज्जत ले जी। उसे गर्भ रह गया और एक दिन वह चुपचाप.....।'

सुरेमन धार–धार रो रहा था।

फिर धीरे–धीरे पॉच–छः साल के भीतर ही महतोसॉई के लोगों ने मेरे सारे खेत ले लिये। कुछ आधे–तीहे में खरीदकर, कुछ फॉसकर और कुछ लिखवाकर। अब वही तीन बीघे खेत है और ये चार महुए के पेड़ हैं अपने पास।'

'मेरे पास न धन है, न धर्म है, केवल मैं अभागा हूँ।'

'अब मेरी भी सुन लो तुम ? मैं वह भी नहीं हूँ जो तुम हो। मैं.....मैं पतुरिया हूँ। इतबार करो !'

'नहीं, नहीं धर्मावतार ! मुझे मत बहकाओ ! मैं सब झूठ–सच जानता हूँ।'

सुरेमन हॅसने लगा।

मालिक को प्रसन्न देखकर दोनों कुत्ते खुषी से पूंछ हिलाने लगे। खूंटे पर जुगाली करते हुए दोनों बैल इधर देखते ही रह गए।

'फिर मैं क्या हूँ ? तुम मुझे क्या सोचते हो ?' चम्पा ने पूछा।

'कुछ नहीं !' यह कहते हुए सुरेमन गॉव की लड़की की तरह लजा गया। और वह चम्पा के सामने से हट गया।

सुरेमन की झोपड़ी में इस तरह उसकी बैलगाड़ी में बैठकर कोई स्त्री आये, गॉव–गढ़ी के लिए यही क्या कम आष्चर्य था ? पर ऐसी स्त्री आये, जो जवान हो, इतनी खूबसूरत और साज–सामान के साथ हो, यह तो कोई विष्वास ही नहीं कर पा रहा था। सुरेमन की अवस्था चालीस के लगभग होगी, पर आज तक तो किसी स्त्री ने षायद उसे मुंह उठाकर देखा तक नहीं।

यह कैसी असम्भव बात ! गैरमुमकिन !

सन्ध्या तक सारा चमरटोला, औरतें, पुरूष, जवान, बुड्ढे सुरेमन के दरवाजे पर नवागता को देखने इकट्ठे हो गए।

औरतें छिप–छिपकर धीरे–धीरे सुरेमन से मजाक करने लगीं कि छप्पर फाड़कर भगवान ने दुल्हन दी है तुम्हे ! बम्बई की दुल्हन है !

सुरेमन अपने दरवाजे पर इतने लोगों की भीड़ देख कर पहले तो खुष हुआ, पर जब उसने यह अनुभव किया कि भीड़ खामखाह तमाषा बना रही है, तब वह लोंगों पर बिकड़ उठा–'सीधे से चले जाऍ लोग अपने–अपने घर ! मैं तो किसी के घर नहीं जाता ! तमाषा देखने आये हैं ! भाग जाओ सब यहॉ से।'

चमरटोला के लोग चले गए। पर वह अपूर्व खबर रातों–रात जैसे दसों दिषाओं में फैल गई।

रात को छोटी चम्पा घर के भीतर सोयी और सुरेमन हाथ में लाठी लिए बाहर बरामदे में रात–भर पहरा देता रहा। निचलाई रात में कहीं जरा भी कुछ खटखटाता तो दोनों कुत्तों को वह उधर लुहकार देता।

सुबह हुई।

महतोसांई के छैलछबीले पांडे लोग सुरेमन के दरवाजे पर आने लगे। फिर बखोरा, चिलिया, डॉडपारा, नूरचक और सुखावल के लोग भी आये।

सुरेमन ने छोटी चम्पा को अपने घर से बाहर न निकलने दिया। गॉव जवार की उतनी भीड़ देखकर उसे याद आया, आज से चार साल पहले मोहनाछोर ताल से भटककर घड़ियाल का एक बच्चा इसी तरह उस डॉड पर आया था। फिर गॉव वालों ने उसकी ऑख में भाले मारकर उसे पकड़ लिया था। उसे देखने फिर इसी तरह गॉव जवार के लोग वहॉ इकट्ठे हुए थे। कोई उस गरीब घायल बन्दी षिषु पर ढेले मारकर खेल करता था, कोई उसके ऊपर थूकता था और कोई उसके बेहोष मुँह पर आग का टुकड़ा फेंककर उसे जगाना चाहता था।

दोपहर तक सुरेमन को लोगों से, लोगों के सवाल–जवाब से परेषान देखकर छोटी चम्पा को असह्य हो गया। वह सुरेमन को मनाकर घर से बाहर निकली और बीसों मुखों को वह सहसा बन्द करती हुई बोली–'हॉ, हॉ, हॉ, मैं सुरेमन की औरत हूँ ! हॉ, हॉ मैं रंडी पतुरिया।

लोग मंत्रमुग्ध होकर छोटी चम्पा को निहारते रह गए !
सुरेमन लजाकर वहॉ से हट गया।

सबको उस तरह चुप देखकर छोटी चम्पा ने सबके सामने प्रस्ताव किया–'मेरा नाच देखना हो, मेरा गाना सुनना हो तो आप लोग सौ रूपये चन्दा कीजिए, आज रात को मैं.....

लोग प्रसन्नता से चिल्ला उठे।

महतोसॉई के बड़े पांडे के लड़के ने कहा–'मैं अकेले पचास रूपये देता हूॅ, नाच मेरे दरवाजे पर होगा।'

डॉडपारा के तिवारी ने कहा–'मैं साठ देता हूॅ, नाच मेरे गॉव में होगा।'

बखौरा के चौधरी के लड़के ने कहा–'मैं सत्तर रूपये देता हूॅ, नाच मेरे गॉव में होगा।'

तब तक उस भीड़ को चीरता हुआ सुरेमन प्रकट हुआ–'सुनो पंचों ! मैं अकेले सौ रूपये देता हूॅ। यह नाच मेरी झोपड़ी में होगा।

पूरी भीड़ अवाक् रह गई।

यह सुरेमन है !

जिसके दरवाजे पर आज तक कभी बिल्ली भी न रोयी ! इसे आज क्या हो गया !

छोटी चम्पा ने सुरेमन को समझाया कि वह कुछ और ही दिखाना चाहती थी। तुम भला क्यों आगे बढ़ आये ?

सुरेमन ने जवाब दिया–'तिरिया होकर जब तुमने मुझ पर इतना विष्वास किया, तो मैं कहॉ जाऊॅ ! और तुम्हें कहॉ जाने दूॅ ! तुम अपनी खुषी से आयी हो और जब मन चाहे तुम अपनी खुषी से चली जाना। पर मेरे जीते–जी तुम इस गॉव में उस घड़ियाल के बच्चे की तरह देखी जाओ, यह कभी नहीं हो सकता।'

सुरेमन की ऑखों में एक अद्‌भुत तेज ! छोटा चम्पा उसे देखती रह गई !

'वह कैसा घड़ियाल का बच्चा ?' चम्पा ने पूछा।

सुरेमन ने वह कथा बता दी।

चम्पा ने हॅसकर कहा 'मैं घड़ियाल का बच्चा नहीं, मैं घड़ियाल हूॅ।'

सुरेमन ने महुआरी में चारों कोंनो पर जाड़ा मारने के लिए शाम से ही लकड़ी के कुॅदे जला दिए। बड़े पांडेजी के यहॉ से गैस की दोनों बत्तियॉ आयीं। दो बखौरा के चौधरी के घर से आयीं, और सुरेमन की वह युगों से सूनी महुआरी, वह उदास डॉड जगामग हो गया। सुखावल गॉव में जमुना महाराज की कथक मंडली में से तबलदार और दोनों सारंगी वाले आये। छोटी चम्पा बक्स में अपने संग वह हजारिया घूंघरू ले आई थी। वह सारा कीमती खूबसूरत पेषवाज, साज–श्रंगार भी।

दो घंटा रात बीतते–बीतते चारों महुओं की परिधि से आसपास गॉव के सैकड़ों लोग जमा हो गए। सुरेमन इतना प्रसन्न कि जैसे किसी की शादी में वह जष्न मना रहा है। पान–पत्ते, बीड़ी–तम्बाकू का भी प्रबन्ध उसने बाबू, पंडित और चौधरी लोगों के लिए किया था।

छोटी चम्पा का नाच ठीक साढ़े आठ बजे रात से शुरू हुआ। सुर्ख रंग का खूब चटक लहॅगा, कटाबदार सुनहरी पत्तियों में सौ–सौ बल खाकर झूलता हुआ। उस पर सबुज रंग की कामदार चोली और लाल दुपट्‌टा ! अंग–अंग पर झलझलाता हुआ आभूषण, नाज–नक्ष पर कहीं खिंचे हुए धनुष, कहीं तेज उभार।

सावन–भादों के काले घने बादलों में जैसे सहसा बिजली कौंध जाए, उसी तरह छोटी चम्पा दर्षकों के बीच चमक उठी। बॉकी चितवन से पहले सब दर्षकों पर जैसे जादू मारने लगी। फिर मषरिक की तरह मुॅह कर उसने साज को माथे से लगाया, और दाईं–बाईं हथेली के बोसे लेती हुई हाथ फैलाकर इस तरह नाच उठी, जैसे वह अब आषिकों की मजलिस में अनगिनत बोसे बरसा रही हो। 'छल्ला दे दे निषानी तेरी महरबानी !'

दस बजे छोटी चम्पा की पोषाक बदल गई। नीले रंग की साड़ी, जरी के काम से दमकती हुई और उसी रंग की बेषकीमती चोली।

नाज–नक्ष की कमान और अधिक खिंची हुई।

'अपने राजा से नैना लड़ैबै
हमार कोई का करिहैं !'

जवान दर्षकों की तो बात ही और थी, बड़े–बूढ़े उस रंगीन फिजा में झूम–झूमकर गा उठते थे। 'मार गोरी नैना दरकि जाय बदरा !'

और एक बजे रात को छोटी चम्पा ने फिर पेषवाज बदल लिया, पाटन का घाघरा सलमा–सितारे के काम से जमागम। लाल रंग की बहुत ही तेज दमकती हुई चोली और प्याजी रंग का दुपट्टा। 'हाय–हाय चम्पा जान ! छुऐ न देबै जोबना, पट्टे गारी देबै।'

फिर पूर्वी तान, बारहमासा, चैता जिस–जिसने भी जो–जो फरमाइषें कीं। और सुबह हो गई।

दोपहर होते–होते सुरेमन की झोपड़ी पर गोइन्दा के महन्त की कार आ पहुॅची। तब तक छोटी चम्पा बेसुध सो ही रही थी।

सुरेमन अपने खेत में आ गया था।

उसे बुलावाकर महन्त सतीनाथ ने चम्पा को जगवा लिया। चम्पा सतीनाथ से गोरखपुर के जीवन–काल से ही खूब परिचित थी। महन्त के आग्रह से चम्पा उनके संग जाने के लिए तैयार हो गई। चलने के समय सुमेरन ने चम्पा के हाथ में सौ रूपये रख दिए। चम्पा उसे देखती रह गई, फिर अपने लाल रेषमी रूमाल में झटपट कुछ और बॉधकर चम्पा ने उसे सुरेमन के हाथ में रख दिया–'यह लो मेरी विदााई।'

'पर कैसी विदाई ?' सुरेमन ठगा–सा रह गया।

'अच्छा विदाई न सही, मेरा किराया ही समझ लेना।'

सुरेमन की ऑखें बरबस झुक गईं। छोटी चम्पा को वे ऑखें छू गईं।

'अच्छा, किराया नहीं। कुछ ही सही।'

और कार तेजी से चली गई। सुरेमन वहीं खड़ा रहा। उसके चारों ओर

बेतरह धूल उड़ रही थी। वह बॅधे रूमाल को लिये हुए देखने लगा–दूर, चुरेब की ओर जानी वाली डहर पर जैसे कोई षिकारी बरबस घड़ियाल के उस बच्चे को अपनी कार पर बिठाए भागा जा रहा हो।

धूल छट गई।

सुरेमन के दोनों कुत्ते कूॅ–कूॅ करते हुए उसके पैरों पर लोट रहे थे। 'सुरेमन, मैं घड़ियाल का बच्चा नहीं, मैं घड़ियाल हूॅ !' चम्पा की यह बात सुरेमन को याद आई।

बड़ी बबुनी ने देईपारा में डंका पिटवा–पिटवाकर यह कहलवा दिया कि फूल बाबू की रखैल पतुरिया है, पतुरिया !

गॉव वाले यह सुनकर चुप रह गए।

औरतों को विष्वास भी हुआ, नहीं भी हुआ। ठकुरी मॉ, बहू को अपने अंक में बॉधे हुए निष्चल–गम्भीर थीं। कहीं किसी का मुॅह न खुला। उन्होंने साफ कह दिया कि बबुनी का यह सब सौंतिया डाह है और कुछ नहीं। कलमुॅही झूठ–झूठ कीचड़ उछालती है बहू पर !

उधर गंगाबेली तब तक उस सनातन घर की बहू बन गई थी। सास की सेवा। सास का अपूर्व आदर। धानीवाली छोटी बहू को उतना निष्छल स्नेह ! देईपारा में उतना भाव कौन बहू–बेटी दे सकती है !

गंगाबेली के स्वभाव और चाल–चलन में जैसे गंगा बहती है। सीधे पल्ले की साड़ी। माथे पर ऑचल। घर–गृहस्थी का सारा काम–काज। जैसे वह उस घर की पावन धुरी ही हो।

फागुन के दिन।

सुबह स्नान करके गंगाबेली पति फूल बाबू के चरण छूने गयी। फूल बाबू का चेहरा गंभीर था। पति को बरबस गुदगुदाने लगी, पर कोई असर नहीं।

'यह क्या हो गया आपको ? बोलिए ? बताइए न !'

गंगाबेली फूल बाबू के पॉव पड़ने लगी।

फूल बाबू उससे अलग हटकर कहने लगा–'यह तुझे क्या हो गया ? तू यहॉ गॉव की औरत बन गई ? इस तरह की साड़ी पहनने लगी ! साड़ी पहनने का यहॉ गॅवारू ढंग ! मुझे तुम्हारा यह चाल–चलन और यह ढोंग कतई पसन्द नहीं।'

'मैं तो पसन्द हूॅ न ! गंगाबेजी ने मुस्कराकर कहा।

फूल बाबू का मन न माना–'मैं तुझे यहॉ अपनी बनाकर ले आया हूँ, नौकरानी बनाकर नहीं।'

'पर यह गॉव है न !' गंगाबेली ने कहा।

फूल बाबू ने उसकी बात काटकर कहा–तो.....तो.....?'

'यह घर है !' गंगाबेजी ने धीरे से कहा।

'और घर में केवल गॅवार पत्नी ही रहती है। यह मैं नहीं चाहता, नहीं चाहूँगा।'

फूल बाबू की यह बात सीधे गंगाबेली के हृदय में छू गई, बल्कि चोट कर गई। उसने झट फूल बाबू के मन के दर्द का एहसास कर लिया।

बड़े प्यार से बोली–'मैं माफी चाहती हूँ। देखिए, मुझे माफ कर दीजिए।

मुझे इसका कुछ भी अहसास न था। मुझे हुक्म दीजिए, मैं क्या करूँ ?

'मेरी पसन्द तुम यहॉ आकर भूल गई क्या ?' फूल बाबू ने उदासी से कहा। 'मुझे अब बताना होगा कि.....।'

'नहीं, नहीं, ऐसी बात कतई नहीं। यह नयी जिन्दगी मेरे लिए इतनी आसान नहीं थी। फिर मैं इसे..... ....। खैर। पर मैं अपने सर की कसम लेकर कहती हूँ इसके बारे में कुछ भी मुझे अहसास नहीं। यह गॉव है। यह पाक घर है। जैसे सब बहुएँ रहतीं है, जैसे छोटी बहू को देखती हूँ, वैसे मैंने अपने लिए सोचा कि यही मेरे लिए भी है। तिस पर भी तो गॉव की औरतें मुझसे बेसिर–पैर की न जाने क्या–क्या बातें यूँ ही करती रहती हूँ। मैं खुद परेषान रहती हूँ कि आप घर में क्यों नहीं आते, घर में मेरे साथ क्यों नहीं रहते ?

बाहर–ही–बाहर क्यों घूमते रहते हैं ? अकेले आप बिना मेरा यहॉ जी नहीं लगता। एक दिन की बात है कि मैं कोठे पर चढ़कर अपने कमरे की खिड़की से, आपको बाहर देख रही थी कि ऑगन से औरतें एकाएक हॅस पड़ीं। मैं सीढ़ी गिरते बची। मेरे कानों में एक औरत की गरम आवाज आयी–'जिसकी जो आदत है, वह कहॉ जाएगी ! खिड़की पर बैठने वाली कभी घर में रह सकती है !'

'कौन थी वह औरत ?' फूल बाबू ने गुस्से में आकर कहा–'मैं उस साली को जान से मार दूँगा। किसी औरत की कोई जरूरत नहीं कि मेरे घर आये !'

ठकुरी मॉ आकर सामने खड़ी हो गई।

छोटी बहू भी सिर झुकाए खड़ी थी।

फूल बाबू ने सबको सावधान करते हुए कहा–'मॉ' गॉव की इतनी औरतें अब घर में क्यों आती हैं ? बहू–बहू दुल्हन–दुल्हन करके गाना सुनेंगी, फिर गॉव से बाहर इसके गाने का शोहरा करेंगी।'

ठकुरी मॉ ने कहा–मेरी बहू के खिलाफ देईपारा गॉव भर में उल्टी–सीधी बात करने वाला नहीं जनमा है। उल्टी–सीधी बात करते वाली, जहर बोने वाली बड़ी बबुनी है।

फूल बाबू मॉ का मुँह देखता रह गया।

धानीवाली बहू ने थोड़ा और घूँघट माथे पर खींचते हुए कहा–'राउर' यह बात की चिन्ता करीं न, राउर दुलहिन हमार जीजी आजकल कुछ उदास रहती हैं !'

ऑगन में खिंची उस चिन्ता और उदासी को सहसा भंग करती हुई गंगाबेली हॅसने लगी–'कहॉ मैं उदास हूँ बहू !'

और ठकुरी मॉ से अलग धानीवाली के कान में उसने कुछ कहा और फूल बाबू को मोहक कटाक्ष से देखते हुए बोली–'यह ननदी के वीरन जरूर कुछ उदास हैं !'

बहू को हॅसी आ गई। ठकुरी मॉ ने बड़े स्नेह से देखा–फूल बाबू के संग उसकी दुल्हन अपने कमरे की ओर जा रही है।

कमरे में जाते–जाते फूल बाबू ने नौकरानी मेंहदिया को आवाज दी। चौदह साल की मेंहदिया मॉग में बेतरह सिंदूर भरे खिस–खिस करती हुई आ खड़ी हुई।

'देख मेंहदिया सुन ! इस बहू को कुछ काम करते हुए यदि मैंने देखा तो तुझे घर से निकाल दूंगा।'

मेंहदिया बोली–'मैं क्या करूँ भइया, दुलहिन खुद जो नहीं मानतीं। राउर का सगर काम अपने हाथ से करना चाहती हैं। ठकुरी मॉजी की भी सेवा यही करती हैं, मैं झूठ क्यों बोलूँ।''

'अच्छा, अच्छा जा, आज से सब बन्द ! बहूजी के लिए पान भी तू ही लगाया कराना।'

'पर पान तो दिन–भर में दो ही बीड़े खाती हैं।' मेंहदिया ने कहा। इस तरह फूल बाबू मेंहदिया से जो–जो कहते जा रहे थे, वह तड़ातड़ साफ–साफ उत्तर देती जा रही थी। और गंगाबेली हॅसती जा रही थी।

ठीक होली के दिन फूल बाबू के पते से छोटी चम्पा का पत्र गंगाबेजी को मिला। पत्र में छोटी चम्पा ने अपना पता नहीं दिया था। केवल स्थान लिखा था, गोइन्दा। पत्र पेंसिल से लिखा हुआ था। उसे पहले बाहर ही–मिलते ही–फूल बाबू ने पढ़ लिया था।

वह खत इतनी मस्ती में लिखा हुआ था, कि फूल बाबू उसे पढ–कर और उसे हाथ में छिपाये हुए उस खिले मुख से गंगाबेली के पास आया, जैसे वह गोरखपुर में आया करते थे।

'क्या है आपके हाथ में ?' गंगाबेली ने बेहद आतुर होकर पूछा।

'एक ऐसी चीज, जिसके बारे में तुम बिल्कुल भूल गई ! बताओ क्या है वह चीज ?'

गंगाबेली एकटक फूल बाबू का खिला हुआ मुखड़ा देख रही थी। 'हाय ! वह क्या बेषकीमती चीज है, जिससे मेरे नूर पर एकाएक रोषनी आ गई। आप खुद बता दीजिए, झट दीजिए वह क्या है ? मेरे आलम ! मेरे .....!'

'चम्पा ! छोटी चम्पा का खत !'

गंगाबेली ने उस खत को जैसे ऑखों में धर लिया। खुषी के इतने ऑसू !

'अच्छा–अच्छा, अब खत पढ़ लो, मैं जा रहा हूॅ।' यह कहते हुए फूल बाबू कमरे से बाहर जाने लगा। गंगाबेली ने झट दौड़–कर फूल बाबू को अपने अंग में बॉध लिया–'मैं न जाने दूॅगी मेरे मषरब ! आप इसी तरह हमेषा–हमेषा खुष रहें ! आपकी यह पेषानी, वह रूखसार, ये खूबसूरत ऑखें इसी तरह नूर बरसाती रहें। मैं यही चाहती हूॅ।'

'अच्छा–अच्छा अब खत पढ़ लो !'

गंगाबेली फूलबाबू का उसी तरह दामन पकड़े हुए बोली–'खत आप पढ़िए, मैं सुनूॅगी।' और गंगाबेली ने फूल बाबू को पलंग पर बिठा दिया। और खुद नीचे बैठने लगी।

फूल बाबू ने हाथ पकड़ लिया–'देखो यही तो मुझे पसन्द नहीं !'

गंगाबेली ने उस क्षण देखा–फूल बाबू के चेहरे पर फिर वही लकीरें। गंगाबेली ने तड़पकर मुख की उन मनहूस लकीरों को जैसे अपने होठों से पकड़ लेना चाहा औरर वे लकीरें उसी लमहे गायब हो गईं, जब वह फूल बाबू की बॉहों में लिपटी हुई पलंग पर आयी।

मेरी बहिना !

राम–राम ! गुड नाइट ! आदावर्ज !

दुनिया के ईष्वर को लाख–लाख शुक्रिया कि उसने हमें यह खूबसूरत मौका तो दिया कि मैं तुम्हें खत तो लिख सकूॅ हूॅ मैं खूब मजे में बहुत ठाठ से। गोइन्दा के वही मजनूॅ तबीयत के महन्त। उन्हीं की कार पर बैठकर लारेलप्पा गाती हुई गोइन्दा के महल में पहुंच गई हूॅ। खूब जषन है यहॉ।क्या कहने हैं !

क्या चाहने हैं ! हवा कुछ गरम है। पानी ठंडा है। फसल उम्दा है। होली के दिन हैं। रंग–राग, पिचकारी और फाग। खूब नींद आती है। वही.....। नहीं–नहीं, कुछ नहीं ! जी कहता है कि मैं अपनी इस कलम को तोड़ दूं। आदत को क्या कहूॅ ! एक पैन तोड़ चुकी हूॅ और यह नमकहराम पेंसिल। इंसान अब मुझे तीर की तरह लगता है। दुनिया मुझे बहिष्त लगती है। दिन आते हैं। महीने बीत जाते हैं, लेकिन मैं मिट्टी–की–मिट्टी ही हूॅ, जिससे ईंट बनती है। खसी बकरों के गोष्त। दो प्याजे, पुलाव, कबाब, ऊपर से शराब, यह सब मैं जो यहॉ बड़े चैन से खा–पी रही हूॅ, इसका मुझे खूब अहसास है। फिर भी मैं तसव्वुर करती हूॅ कि मेरी प्यारी अजीज़ बहिना, तुम मुझसे भी बहुत–बहुत अच्छी तरह हो। मैं तो फिर भी अकेली हूॅ, तुम्हारे संग तो तुम्हारा ईष्वर है, दुर्गाजी हैं, फूल बाबू के साथ हो तुम।

बहिना, सुनो तुम्हारे मज़े के लिए लिख रही हूॅ, पढ़कर हॅसी आए, इसीलिए, महज़ इसीलिए बयान कर रही हूॅ कि महन्त सतीनाथ के चार बीवियॉ हैं। अब तक जितना मैंने देखा है, उसी सचाई से यह मैं तुम्हें लिख रही हूॅ। सोचो कितनी मजेदार बात है–महन्त के चार–चार बीवियॉ, न जाने कितनी रखैल, महबूबा, छीना–झपटी, फिर भी यह महन्त.....। नहीं–नहीं माफ करना बहिना, आगे मैं कुछ न लिखूंगी। मैं कितनी पागल हूॅ कि आगे क्या लिखने जा रही थी। मेरी मुर्दा अकल को तो देखो, खत लिखते–लिखते मैं यह भूल बैठी कि तुम कहॉ हो ! कहॉ तुम ! तुम्हारा वह पाक घर, वह पाक जिन्दगी ! वह मज़हबी प्यार ! वह फूल बाबू !

सबको मेरा आदाब। सुनो, तुम्हें देखने को बहुत जी चाहता है, पर क्या करूँ ! मैं तो लापता आवारा हूँ। काष, कभी मैं अपना यह रूप बदलकर तुमसे एक बार ही मिल पाती !

पर, मैं अपना यह रूप कैसे बदल पाऊँगी ! अगर रूप बदल भी दूँ, तो इस जिस्म से कस्तूरी की तरह जो खुषबू निकलती है, उसे कहाँ ले जाऊँ ? आदमी तो चारों ओर हैं मेरे लिए। और कितना क्या लिखूँ ! तुम्हारे पास लिखने लायक मेरे पास और कुछ नहीं। शायद वह तुम मेरे पास कभी लिखो, पर जब तुम्हे मेरा पता होगा तब न ! अच्छा छोड़ो बहिना ! मेरा प्यार लो अब, बस अलविदा।

तुम्हारी वही.....!

ठकुरी माँ ने बड़ी साध से पूछा–'बहू की चिट्ठी नैहर से आयी है ?

'हाँ, माँ !' फूल बाबू ने कहा।

ठकुरी माँ गद्‌गद् होकर चली गईं।

गंगाबेली चम्पा के उस खत को बार–बार पढ़ती रही। और उसे फूल बाबू के वही दो मुख, एक सूरजमुखी की तरह खिला हुआ, और दूसरा उदास, मनहूस लकीरों से भरा–भरा याद आते रहे।

दोपहर के बाद बाहर गाँव के लोग बहुत बड़े झुण्ड में ढोलमंजीरा और करताल बजाकर नाचते हुए फाग गा रहे थे। रंग–अबीर और गुलाल की चहल–पहल थी।

गाँव की लड़कियों ने गंगाबेली को कई बार सराबोर कर दिया था। वह नये कपड़े बदलकर दरवाजे पर औरतों के संग खिंची हुई आयी। फूल बाबू ने संकेत किया। गंगाबेजी तुरन्त वहाँ दरवाजे से हटकर भीतर चली गई। वहाँ आँगन में अकेले उसका दम घुटने लगा वह सीढ़ी चढ़कर कोठे पर गयी और खिड़की से गाँव का फाग निहारने लगी।

गाँव के देवर लोग फूल बाबू की दुल्हन पर रंग डालने के लिए घर में घुसे। आँगन में आये। ठकुरी माँ से पूछा।

फूल बाबू ने बताया–'वह आज सुबह से भीग रही है और अब उसे बुखार है, वह बन्द कमरे में लेटी है।'

लोग बाहर चले आए। फाग गाकर समाप्त करते हुए लोग अंत में फाग–मंगल गाने लगे–'सदा आनन्द रहे द्वारे मोहना, जे जीयै ते खेल फागुराज मन मोहना !

जाती हुई गाँव की फाग–पार्टी में से सहसा पिचकारियाँ खिड़की के निषाने पर चलने लगीं।

फूल बाबू ने देखा, और उसे बेहद बुरा लगा।

घर में जाकर उसने गंगाबेली से कड़े स्वर में कहा–'सचमुच जिसकी जो आदत होती है, वह नहीं जाती। तुम फिर खिड़की में जाकर क्यों बैठी ?'

गंगाबेली ने दौड़कर फूल बाबू के मुख पर अपना काँपता हाथ रख दिया, और वह डरी हुई अपने चारों ओर देखने लगी–'कोई और तो नहीं है ! किसी और ने तो नहीं सुना !'

नहीं, कोई नहीं।

पर यह व्यापार कब तक चलेगा ! गंगाबेली माथा झुकाये हुए चुपचाप फूल बाबू के सामने से हट गई। फूल बाबू को आवेष में बकी हुई अपनी बात का अहसास हुआ। गंगाबेली पर उसे तीखे प्रभाव को भी देखा। और वह अपराधी स्वर में गंगाबेली के पास दौड़ा–'सुनो मुझसे गलती हुई ! मुझे माफ करो ! मेरे मुँह से यूँ ही निकल गया !'

गंगाबेली फफक–फफक कर रो रही थी।

रंग के छीटें उस पर बेतरह पड़े थे। वह आधी भीग गई थी। फूल बाबू उसे पकड़कर जब मनाने चला, तो उस समय गंगाबेली के शरीर की गरमी से भाप बनकर उड़ते हुए वे छींटे जैसे उसके मुँह में चले गये। उसे मचली आने लगी।

फूल बाबू ने तुरन्त अनुमान किया–पिचकारी का वह गंदा रंग है और कुछ नहीं।

फूल बाबू ने गंगाबेली को उठाकर अपने सामने बिठा लिया।

बड़े प्यार से उसके समूचे मुख को अपने हाथ में घेरकर उसने देखा, जैसे कोई हाथ में आइना पकड़कर देखे।

'मुझे नहीं माफ करोगी ? बोलो !' फूल बाबू ने कहा।

गंगाबेली की ऑखे ऑसूओं में डूबी हुई कमल–पॉखुरी की तरह बन्द थीं। तड़पकर ऑख खोल दी। बोली –'मैं क्या, तुम बताओ, मुझे साफ़–साफ़ बताओ। मैं क्या करूॅ तुमने संकेत किया, मैं उसी क्षण दरवाजे से हट गई। मैं खिड़की से झॉकने लगी तो तुमने मुझे यह क्या कहा। तुम भी अगर।

गंगाबेली का कंठ पूरी तरह रूॅध गया। वह फूल बाबू के अंक से लगी फिर उसी तरह से रोने लगी।

'अच्छा, अच्छा मुझे माफ करो !'

'भला मेरी माफ़ी का क्या सवाल उठता है ! मैं क्या हूॅ ! वह दरजा तुम्हारा है।'

रात को फूल बाबू शराब की छोटी–सी बोतल लिये गंगाबेली के पास आया।

'यह क्या है ?' गंगाबेली बिलकुल घबरा गई।

फूल बाबू बड़े दुलार के स्वर में कहने लगा, 'गॉव में होली की रात यह जरूर पी जाती है। यह शुभ है। एक वर्ष होली में खत्म होता है, दूसरा शुरू होता है। आज की रात जो इसे नहीं पीता, उसका नया साल अच्छा नहीं गुजरता।'

'तो फ़र्ज के लिए जरा–सा होंठ पर छुआ लो।'

'नहीं, होंठ पर छुआने से काम नहीं चलता। आज तो पीनी ही पड़ती है।'

गंगाबली फूल बाबू का वही खुष चेहरा देखती हुई बोली, 'तो आज तुम पीओगे ही ?'

'हॉ, थोड़ी–सी।'

'और कल ?'

फूल बाबू ने सिर हिलाया और शीषे के गिलास में शराब उॅड़ेलने लगा।

गंगाबेली ने घबराकर हाथ पकड़ लिया, 'नहीं, नहीं, इतनी नहीं। मेरे सिर की कसम, तुम इतनी शराब नहीं पिओगे, नहीं पिओगे।'

उससे और आगे जाकर तत्काल फूल बाबू ने कहा, 'तुम्हे मेरे सिर की कसम ! यह तुम पिओगी, इतनी तुम पिओगी !'

वह गिलास फूल बाबू ने गंगाबेली के सामने रख दिया और अपने लिए वह दूसरे गिलास में डालने लगा।

'यह क्या हो गया है आज तुम्हें ?' गंगाबेली आहत स्वर में, पर निष्चय भाव से बोली, 'मैं शराब नहीं पीती। तुम नहीं पीते। यह कुफ्र कहॉ से आ गया ?'

'तुमने पी तो है। मैंने अपने हाथ से पिलायी है।'

'वह तो जिन्दगी की बीती रात की बात है। मेरे नूर, मेरे चॉद–सूरज, मेरे ख़ालिक, वह रात तुम्हारी रोषनी से बीत चुकी है। उसकी बात तक मत करो।'

फूल बाबू ने भावावेष में आयी हुई गंगाबेली के दोनों हाथों को पकड़ लिया, 'छोड़ो सब बातें। इसका जवाब दो, मैंने तुम्हारे लिए अपने सिर की कसम खाई है !'

'हुजूरे–आलम ! पहले मैंने खाई है।'

'अच्छा तो लो, मैं उतनी शराब नहीं पीता। 'यह कहते हुए फूल बाबू ने अपनी आधी से अधिक शराब बोतल में उलट ली।

'अब चलो, मेरे सिर की कसम का जवाब दो !'

गंगाबेली अजीब धर्म–संकट में आ फॅसी।

दर्द–भरे स्वर में वह बोली, 'तो मुझे शराब पिलाओगे ?'

'बुरा क्या है ?'

'समझ लो कि यह बहुत बुरा है। हमारे लिए अब यह गुनाह है।'

'मैं और कुछ नहीं जानता। मैं सिर्फ अपनी कसम जानता हूॅ, जिसकी तुम्हें जरा भी परवाह नहीं है।'

'नहीं ! खैर, यह लो, तुम्हारी जैसी मरजी !' गिरे स्वर से यह कहकर

गंगाबेली ने गिलास की पूरी शराब पी ली और पलॅग पर कटे हुए वृक्ष की तरह गिरकर जैसे बेहोष हो गई।

अगले दिन दोपहर को गंगाबेली की ऑख खुली। उसके सिर और पेट में बेहद दर्द। मेंहदिया माथे पर लगाने के लिए कोई दवा ले आई। उसका लेपन कर वह बहू का पेट सारने लगी।

फूल बाबू दोपहर का खाना खाकर फिर सारा दिन बाहर दीवान–खाने में सोते रहे।

गंगाबेली दीवानखाने में गयी। उसका शरीर अब तक रह–रहकर कॉप जाता था।

फूल धुत पड़ा था।

बन्द आलमारी में उसने शराब की दूसरी बन्द बोतल देखी। वह और कॉपने लगी। बोतल को ऑचल में छिपाए वह अपने कमरे में गयी और मेंहदिया को बुलाया।

'तू मेरा काम करेगी ?'

'हॉ, क्यों नहीं दुलहिन !'

'किसी को कानों–कान खबर न होने पाए।'

'नहीं दुलहिन, मैं झूठ क्यों बोलूँ ! बताइए न !'

'यह बोतल ले। खूब जतन से अपने ऑचल में छिपा ले और उसे ताल में दूर फेंक आ।'

मेंहदिया तेजी से घर के बाहर निकली। नीम के पेड़ के पार उसे राजा बाबू मिले !

'कहॉ जा रही है रे ?'

'कहीं नहीं बाबू, जरा ताल की ओर जा रही हूँ।'

ताल के किनारे पहुँचकर जैसे ही उसने ऑचल से निकालकर शराब की बोतल ताल में फेंकी, उसी समय राजा बाबू उसकी ऑखों में कौंध गए।

'बोल, क्या था वह ?'

'मैं झूठ क्यों बोलूँ बाबू ! वह बोतल थी। बड़ी दुलहिन ने दी थी।'

'हूँ ! शराब की बोतल ! गेहूँ बेचकर शराब .....।'

मेंहदिया थर–थर कॉपती हुई गंगाबेली के पास आयी और साफ–साफ बता दिया कि उसे राजा बाबू ने देख लिया।

गंगाबेली चुप रह गई।

राजा बाबू ठकुरी मॉ के सामने घर में तेज बोल रहे थे–मैं कहता हूँ गेहूँ बेचकर इतनी महँगी शराब नहीं खरीदी जाएगी। जिन्हें खेत में अन्न पैदा करना पड़ता है, उन्हें मालूम है कि क्या कीमत है ! उन्हें क्या, जिन्दगी–भर वह बैठे फूँकते रहे हैं। गोरखपुर में झूठी पढ़ाई के नाम पर, और यहां अपने नाम पर ! अब वह जमींदारी नहीं है जो फूँकने से हरी होती थी, यह सीधे–सीधे अब किसानी–काष्तकारी है जो कड़े हाथ छूने से ही कुम्हलाती है। देखों न जाकर, दीवानखाने में पड़े हैं वह सपूत !'

ठकुरी मॉ ने कहा, 'अच्छा, धीरे–धीरे बोल ! मैं उसे समझा दूँगी ! तू ऐसे बोलता है, दुल्हन सुनेगी तो क्या कहेगी ! यह ठाकुर राजा का घर है, बनिया–बक्काल का नही जो छटॉक–तोले में मरता–जीता है !'

'देखूँगा यह ठकुराई कब तक चलती है !' राजा बाबू ने गिरे स्वर से कहा, 'एक छोड़कर न जाने कहॉ से दुल्हन लाए, हम नहीं बोले। लेकिन गेहूँ बेचकर मैं इस शराब के लिए चुप नहीं रहूँगा !'

'दुल्हन का ताना मारेगा तो मैं तुझे मार बैठूँगी, हॉ ! यह दुल्हन बड़े भाग्य से मिली है रे ! देख न जब से यह इस घर में आयी है हमारा कितना शुभ और लाभ हुआ ! दुल्हन को बच्चा होने वाला है। कहॉ मैं निराष हो गई थी। एक जून दूध देने वाली भैंस अब दोनों समय दूध देने लगी है–दूना दूध। जमींदारी का वह मुकद्दमे वाला पूरा मुआवजा भी मिल गया। मटर और सरसों की कितनी अच्छी फसल हुई है ! गेहूँ कैसा है ! काटा है कभी ऐसा ? या गॉव वालों ने कभी ऐसा काटा है ? गॉव के ब्राह्म्णों के कहने में तू आया है। अपनी अक्ल तू क्यों नहीं देखता रे ! किसी के कहने में अगर तू फिर कभी आया, तो मुझसे बुरा कोई न होगा। तू जा। फूल को उठने दे, मैं खुद उससे बात करूँगी। मेरे रहते तू कौन होता है फूल से ऐसी बात करने वाला !

उसी समय गंगाबेली आ खड़ी हुई, 'माफ कीजिए मॉजी, आप इतनी परेषान न होइए। यह बात जरूर है कि छोटे बाबू की बातें गलत भी नहीं हैं।'

'बहू, जा फूल को जगा, उसे अब बहुत भूख लगी होगी।' ठकुरी मॉ ने कहा, 'और सुन बहू, याद रखना इस घर का बड़ा लड़का सबसे बड़ा माना जाता है–मॉ–बाप से भी बड़ा। वह अपने भाग्य का राजा माना जाता है, उसकी इच्छा का कोई विरोध नहीं कर सकता।' गंगाबेली ठकुरी मॉ की बात से जैसे समुन्दर छू रही थी। मॉ का इतना बड़ा दिल, यह फैयाजी देखकर गंगाबेली हैरान हो गई। ऐसी औरत, इतनी निष्चिन्त दरियादिल और शरीफ–गंगाबेली ताज्जुब में पड़ गई।

उसे लगा कि उस घर के बड़े लड़के, उस घर के बादषाह फूल बाबू की शराब की बोतल झील में उस तरह फिंकवाकर उसने शायद गलती की है। मॉ अपने बेटे को किस्मत का राजा कहती है। फिर उस मॉ के सामने उसकी बीवी का क्या दरजा जो उसकी किस्मत के लिए इस कदर डरे।

गंगाबेली दीवानखाने में फूल बाबू के पलॅग के पास गयी और उसका पैर छूकर जगाने लगी।

फूल बाबू जगा तो गंगाबेली उसके संग–संग चलती हुई अपने कमरे में आयी।

'भूख लगी है ? क्या खाओगे ?' गंगाबेली ने दुलार से पूछा।

'कुछ नहीं । पिऊॅगा ! पिऊॅगा !'

गंगाबेली चुप। काठ मारी हुई।

'कहॉ मै मेरी बोतल .....? जाओ, मेरी अलमारी से लाओ !'

'इस तरह चुप क्यों हो ? मुझे किसी का डर है क्या ?

'मैंने वह झील में फिंकवा दी।'

गंगाबेली की यह बात सुनते ही फूल बाबू क्रोध से मानो जल उठा, 'क्यों फिंकवा दी ? जाओ, तुम्हीं को उसे निकालना पड़ेगा। अभी जाओ !'.....जाओ !'

सारे घर में तहलका–सा मच गया। मेंहदिया थर–थर कॉपने लगी।

छोटी बहू अलग। राजा बाबू चुप इधर।

ठकुरी मॉ उसी क्षण गंगाबेली के कमरे में प्रविष्ठ हुई–'क्या है ? मुझे वह पता है। चलो पहले खाना खाओ, फिर वह आ जाएगी।'

यह कहते–कहते ठकुरी मॉ ने फूल को उसकी बॉह पकड़कर उठा लिया।

भोजन कर चुकने के बाद फूल बाबू ने मॉ के सामने गंगाबेली को बुलाया, और फिर वही आज्ञा दी–'झील से जाकर तुम्हीं निकालो उसे !'

गंगाबेली ने ठकुरी मॉ का मुॅह देखा, बिल्कुल इस साफ़ से कि क्या मॉ तुम्हारे पुत्र की यह आज्ञा तुम्हें भी मंजूर है क्या ? सच, मैं ही झील में उतरकर उस गहरे पानी में शराब की बोतल ढूॅढूॅ !

ठकुरी मॉ का रूख बिल्कुल साफ़ था। चुप मुख पर उनके भाव चमक रहे थे–याद रखना इस घर का बड़ा लड़का सबसे बड़ा माना जाता है–मॉ–बाप से भी बड़ा। वह अपने भाग्य का राजा माना जाता है। उसकी इच्छा का कोई विरोध नहीं कर सकता।

गंगाबेली वहॉ से सीधी मुड़ी–चुपचाप, संकल्प–सिद्ध। मेंहदिया को संग लेकर वह झील की तरफ जाने लगी।

चार घड़ी रात बीत चुकी थी। पूर्णमासी का चॉद झील की कमर पर आ गया था। झील का सारा पानी, सारा शांत वक्षःस्थल सुहागिन की उस सेज की तरह दमक उठा था, जो चमेली की कलियों से चुन–चुनकर सजायी गई हो। गंगाबेली और मेंहदिया जैसे ही झील के किनारे पहुॅचीं, टिटहिरी का जोड़ा बहुत ही तेज बोलकर दूर जा खड़ा हुआ। क्रौंच की स्त्री की भी एक तेज आवाज आयी, जैसे उसने अपने क्रौंच पति से कोई प्रष्न पूछा हो।

मेंहदिया गंगाबेली को पानी में वह जगह दिखाने लगी, जहॉ उसने शराब की वह बोतल फेंकी थी।

गंगाबेली तत्काल झील में कूदने जा रही थी कि पीछे से राजा बाबू ने आकर पकड़ लिया, 'भाभी, ऐसा न करो। मैं निकालता हूॅ उस बोतल को।'

'नहीं–नहीं, तुम नहीं। वहॉ की गहराई.....।' यह कहते–कहते गंगाबेली राजा बाबू का मुॅह तकने लगी।

'मुझे मालूम है वहॉ की गहराई। कोई चिन्ता मत करो भाभी !

यह कहकर राजा बाबू झील में उतर गए। गंगाबेली चीख पड़ी, रूको बाबू, मैं भी संग चलूंगी और उसी स्वर के साथ उसने झील में पैर डाल दिए।

मेंहदिया बड़ी मालकिन को सॅभाले झील के किनारे खड़ी थी।

और राजा बाबू को तीसरे गोते में शराब की वह बोतल मिल गई।

गोइन्दा के महन्त सतीनाथ की कोठी के सामने वह विषाल मंदिर था, सुनहले कंगूरों वाला, जिसमें महन्त के गुरू, वही गुरू, गम्पनाथजी रहते थे। बड़–सा भयावह मुख, भभकता हुआ ललाट, सदैव भस्म पुती हुई।

दमकती हुई लाल–लाल रतनारी ऑखें।

महन्त सतीनाथ की कोठी में आए, छोटी चम्पा को इतने दिन हो गए पर अब तक उसका सामना महन्त के उस गुरू से नहीं हुआ, यद्यपि छोटी चम्पा के बारे में गुरू को उसी दिन पता हो गया था।

महन्त के चार स्त्रियॉ थीं,–बड़ी, छोटी, उससे छोटी और एक सबसे छोटी, कमसिन भोली–भाली ऑखों वाली, शरम से जिसका मुखड़ा अब तक लाल हो उठता था। बोलती थी तो उसके फूल–जैसे ओंठ फड़कने लगते थे। वे चारों महन्त की स्त्रियॉ थीं, पत्नियॉ नहीं। उनके कानूनी पति और ही थे। ऐसा अंग्रेजों का बनाया हुआ कानून था, जो जब तक चला आ रहा था। बड़ी स्त्री नैपालिन थी, राणा–परिवार की। सुभद्रा नाम था, महन्त के बड़े पेषकार काषीनाथ के साथ ब्याही गई थी। छोटी बॉसी तहसील की ब्राम्हण कन्या थी। एक बार महन्त उधर बॉसी के राजकुमार के संग षिकार खेलने गये थे–उसके रूप की प्रषंसा सुनी, और उस फुलदेई को अपने महल में बुला लिया। फुलदेई की शादी महन्त के दीवान शंभू तिवारी के नाम से हुई। उससे छोटी शायद मुसलमान कन्या थी–षर्वरी नाम था उसका। बिहार सूबे की थी वह। बड़े कारवरदार करीम खॉ के नाम से उसका निकाह हुआ था। और सबसे छोटी वह सूरजमुखी, किसी गरीब ठाकुर की लड़की थी। अभी पिछले साल वह लायी गई थी। वह बहुत खुष थी, क्योंकि तब से उसके मॉ–बाप के खाने–कपड़े का कुछ आराम हो गया था। सूरजमुखी की शादी महन्त के एक दूर के रिष्तेदार कुंजन से हुई थी, जो महन्त की ही कोठी में बचपन से पलकर अब हाईस्कूल की परीक्षा दे रहा था।

सुभद्रा का दिमाग कुछ खराब हो गया था–किसी से कोई मतलब नहीं, सरोकार नहीं। अपने–आपसे बुदबुद–बुदबुद करके सदा बातें करते रहना। फुलदेई तीन बच्चों की मॉ थी। महन्तजी की सेवा में रहती थी। शर्वरी से कोई बाल–बच्चा न था।

छोटी चम्पा से एक दिन फुलदेई और शर्वरी ने पूछा, 'चम्पाजान ! आपमें ऐसी क्या खास बात है कि महन्तजी इतने खुष हैं !'

चम्पा ने कहा, 'हुजूर, मैं चम्पाजान हूॅ। मुझे एक राज मालूम है–इंसान का राज और उसके लिए मेरे पास एक हुनर है–बचपन से सीखा हुआ वह हुनर कि दूसरों की तरफ कैसे देखना चाहिए, ऑख बचाकर मर्द से कैसे मुस्कराना चाहिए। मर्द को ऐसे छूए कि वह न छूने पाये। मर्द को ऐसे दे कि उसे लगे कि वह किसी हूर का समर्पण पा रहा है, पर वह अपने–आप में पत्थर का बुत बनी रहे–जो खिलकर भी न खिले, मिलकर भी न मिले। इससे उसकी जवानी, उसका रूप, उसका अहसास न कभी खर्च हो, न कभी कुम्हलाए। तभी मैं चम्पा हूॅ। मुझमें रूप और हुस्न का हुनर है। मुझमें से मर्द को अपनी ओर खींचने की खुषबू निकलती है, पर चम्पा पर कोई भौंरा नहीं बैठता। तभी मैं इतनी हरी–भरी हूॅ। मेरा फूल मेरे हरी–भरी पत्तियों के जिस्म में इस तरह छिपा रहता है कि मर्द उसे हमेषा मेरे चारों ओर घूमकर तलाषता है और आप लोग हुजूर.....'

चम्पा यह कहते–कहते रूक गई।

'हॉ–हॉ ! हम लोग क्या हैं ?' दोनों ने बड़े आग्रह से पूछा और वे दोनों चम्पा की तेज ऑखों को निहारती रहीं।

'आप लोग !' चम्पा ने कहा, ' आप लोग हुजूर ! केले के फूल हैं, जो सिर्फ एक ही बार फूलता है–ऐसा कि कहीं कुछ न बाकी रहे, कहीं कुछ न छिपाये छिपे। कोई भी उसे, चाहे इंसान चाहे जानवर, एक ही बार तोड़ ले और मरोड़कर फेंक दे। और बच्चे उसका खेल–खेल डालें। फिर फूल बिना, खुषबू और हुस्त बिना उस नंगे–केले के पेड़ का क्या हो ? फिर तो बागवान उस केले के पेड़ को अपने चमन से काटकर फेंक देना चाहेगा, या उसे अपनी जगह पर महज खड़ा छोड़ देगा।'

फुलदेई ने कहा, 'मुझमें और तुममें जमीन–आसमान का अन्तर है।'

शर्वरी ने समर्थन किया, 'तुम्हारा वह पेषा है, हमारी यह जिन्दगी है।' छोटी चम्पा ठहाका मारकर हॅस पड़ी और हॅसती रह गई।

फुलदेई को बुरा लगा, 'बन्द करो यह हॅसी ! मुझे यह पसन्द नहीं।'

शर्वरी छोटी चम्पा का हॅसता हुआ मुॅह निहारती रह गई।

छोटी चम्पा ने मुस्काराहट के साथ कहा, 'माफ़ कीजिए। दरअसल आप लोगों में और मुझमें कोई फ़र्क नहीं। आप अपने को स्त्री समझती हैं और मुझे वेष्या और रंडी। वेष्या क्या है हुजूर ? जो बिना अपनी ख्वाहिष के महज रूपये के लिए किसी भी पुरूष को अपना जिस्म दे ! माफ़ी चाहती हूॅ हुजूरआली, यही तो आपको भी करता पड़ता है। मेरे सामने मेरा पेषा है, रूपया है, और आपके सामने डर है। और डर को मैं गुनाह समझती हूॅ। डर से रूपये का दरजा बड़ा है सरकार ! मै तो यही जानती हूॅ।'

'चुप रहो' , शर्वरी गुस्से से लाल हो गई।

फुलदेई रो पड़ी।

छोटी चम्पा अपनी गुस्ताखी के लिए माफी मॉगने लगी। और मुहब्बत के लहजे में बोली, 'मुझे आप लोगों से बेहद हमदर्दी है हुजूर ! जिस दिन मैं यहॉ आयी हूँ, आप लोगों को देखकर मैंने सरकार से कहा था–मैं क्या हूँ आप लोगों के सामने ! एक–एक में इतनी खूबसूरती, इतनी हया और आब ! मुझे तो शरम लगती है आप लोगों के सामने खड़ी होते !'

'पर हम 'तुम' तो नहीं है, ' शर्वरी ने कहा।

अदब से झुकती हुई छोटी चम्पा ने कहा, 'बेअदबी माफ करें तो मैं फिर अर्ज करूँ हुजूर साहिबा ! मर्द हरदम कुछ तलाषता रहता है। जो चीज पा जाता है, उससे वह कुछ ही दिनों बाद बेरूखी अख्तियार कर उससे आदतन आगे बढ़ जाता है। वह समझता है कि वह चीज तो उसकी हो ही गई और उसकी तलाष कहीं और मुड जाती है। जो उसके लिए आसान है, जो उसे हासिल है, उसकी वह कभी कीमत नहीं लगाता। इसीलिए जो उससे दूर है, जो उसके लिए मुष्किल है, वह उसी ओर दौड़ता है और उसे किसी भी कीमत पर पाना चाहता है। मर्द का यही राज हमें याद रखना पड़ता है। तभी हम नाचीज की इतनी कीमत है।'

फुलदेई और शर्वरी ठगी–सी छोटी चम्पा का मुँह देखती रहीं।

छोटी चम्पा कहती जा रही थी, 'मैं क्या अर्ज करूँ ! छोटा मुँह बड़ी बात ! लेकिन अपनी ऑख की कसम मुझे अब ऐसा महसूस होता है कि इस दुनिया की सारी औरतों का महज यह एक दर्द है, मर्द को पा लेना, जो बिल्कुल गैर–मुमकिन–सी चीज है। जो बेचारा खुद किसी को पाने की हरदम तलाष में भटक रहा है, वह किसी को क्या मिलेगा !

'तुम उस दर्द में नहीं हो क्या ?' दोनों औरतों ने पूछा।

'मैं !' चम्पा के चेहरे पर एक लम्बी मुस्कान फैल गई।

'मै ! सिर्फ मैं उस बेमानी दर्द से बाहर हूँ, क्योंकि किसी भी मर्द से मेरा कोई लगाव नहीं है। तभी मुझे हर आदमी एक ही लमहे में अपना समझ बैठता है, क्योंकि मैं किसी भी मर्द को अपना नहीं समझती। अपने चारों ओर इतनी लम्बी–चौड़ी और इतनी गहरी खाई खींचे रहती हूँ कि आदमी की तलाष मुझ तक आते–आते उसी खाई में डूब जाए। और फिर वह मेरी खाई के उस पार और मैं इस पार।'

सहसा बाहर से महन्त सरकार के भीतर आने की आवाज आई। फुलदेई और शर्वरी वहॉ से उठ, भीतर चली गईं।

महन्त सतीनाथ सीधे चम्पा के पास आ खड़ा हुआ। महीन धोती और कीमती रेषम का कलीदार कुरता पहने हुए। भरा हुआ रक्ताभ मुख। गौर–वर्ण। सुन्दर मूँछें। मुँह में हरदम पान। उँगलियों में मूल्यवान अँगूठियॉ।

चैत बीत रहा था। सतीनाथ चम्पा का हाथ पकड़े हुए कोठी के भीतर–ही–भीतर से पीछे की फुलवारी में चला आया।

छोटी चम्पा ने देखा था–जिस समय वह सतीनाथ के साथ हाथ–में–हाथ लिए घर को पार कर रही थी, शर्वरी और फुलदेई दोनों उन्हें छिपी निहार रही थीं। और वह सुर्जमुखी माथे पर जरा–सा घूँघट खींचे हुए ऑखों में हँस रही थी और गालों पर शरमा रही थी।

दिन डूबने में थोड़ी–सी ही देर थी। गुलाब, बेला, चमेली, जूही आदि पुरूषों के अलावा फुलवारी में केतकी और कचनार के बहुत–बहुत पौधे थे। फुलवारी की चहारदीवारी से लगकर चारों ओर कलमी आम के पेड़ तैयार बौरों से झुके पड़ रहे थे। बौर की मादक सुगन्ध से बँधी छोटी चम्पा पूरब दिषा में देखने लगी।

'गोरखपुर याद आ रहा है क्या ?' सतीनाथ ने पूछा।

'नहीं हुजूर, उसे तो मैं कब की भूल गई। जहॉ हुजूर हैं, वहीं मेरे लिए सब–कुछ है।' चम्पा ने बॉकी चितवन से कहा।

'सुनो, ' सतीनाथ ने एकाएक कहा, 'तुम्हें मेरे गुरू महाराज ने आज रात को मंदिर में बुलाया है।'

'सरकार कहॉ मैं और कहॉ वह मंदिर ! छोड़िए भी, क्या मजाक करते हैं ! सुनिए, आप कभी मंदिर में जाते हैं ?'

'सच कहूँ ! मेरे लिए मंदिर–षिवाला तुम–जैसी हसीना का शरीर है। तभी मुझसे और गुरू महाराज से कभी नहीं पटी। यूँ दिखावे के लिए मुझे कभी–कभी अपने उस मंदिर में जरूर जाना पड़ता है, पर आज तक मैंने कभी भी वह पूजा नहीं की है, विषेषकर वहाँ उस मंदिर की पूजा !'

'क्या है उस मंदिर की पूजा ?'

'वह तो मुझे बचपन में ही रटाया गया है कि–

वन्दे तन्नाथतेजो भुवनतिमिरहं भानुतेजस्करं वा।
सत्कर्तृ व्यापकं त्वा पवनगतिकरं व्योमवन्निर्भरं वा।
मुद्रा नाद त्रिषूले विमलरूचिधरं खग्गरं भस्म मिश्रं,
द्वैतं या द्वैतरूपं द्वयत उत परं योगिनं शंकरं वा।'

'मतलब ? इसका मतलब क्या हुआ ?' चम्पा ने पूछा।

सतीनाथ ने कहा, 'मतलब भी बताया गया था, पर मुझे याद नहीं। शायद इसका यही मतलब है कि समस्त यतियों में श्रेष्ठ शंकर भगवान् हैं। उन्हीं की पूजा–स्तुति में कल्याण मिलेगा।'

उसी समय सुर्जमुखी लज्जा के भार से दबी हुई हाथ में चाँदी के डिब्बे में पान लिए हुए वहाँ आयी।

छोटी चम्पा को पान देकर, खुद खाकर सतीनाथ ने कहा, 'चम्पा जान, कुछ हुनर इसे भी दे दों। यह सुर्जमुखी मुझे बेहद पसन्द है।'

सुर्जमुखी शरमाकर भाग गई और शर्वरी प्रकट हुई–कुछ वर्ष पहले यही आपने मेरे लिए कहा सरकार ! तब लखनऊ से गौहरजान यहाँ आयी थीं। गोरखपुर के कलक्टर साहब की यहाँ दावत दी गई थी मैं षिकायत नहीं कर रही हूँ, महज एक आयी हुई बात दुहरा रही हूँ।'

यह कहते हुए सतीनाथ छोटी चम्पा को संग लिए हुए मंदिर की ओर चला गया।

मंदिर के रास्ते में चम्पा को सतीनाथ की बात नहीं भूल पा रही थी कि 'सच कहूँ, मेरे लिए मंदिर–षिवाला तुम जैसे हसीना का शरीर है।' साथ ही वह सतीनाथ का वह भाव भी याद कर रही थी कि मेरे जीवन में आयी हुई औरतों में सबसे अधिक–इतना प्यार मैंने केवल तुमको किया है। इतबार करो मेरी जान ! ठी है। मैं इतबार करूँ या नहीं ! पहले तुम तो इतबार करो महन्त ! छोटी चम्पा के इतबार करने का सवाल ही नहीं उठता। उसे किसी भी चीज पर इतबार नहीं, विष्वास नहीं। चौदह–सोलह साल की उमर से सभी तो उससे प्यार करते रहे हैं और सभी उसे अपनी मुहब्बत की कसम देते रहे हैं। पर कहाँ है वे मुहब्बत और प्यार ? मैं तो सिर्फ एक नषा जानती हूँ–सिल–सिलेवार नषा, जो कभी न टूटे, कभी न छूटे। यह नषा ही मैं हूँ जिसमें हमेषा–हमेषा के लिए पड़ी रहना चाहती हूँ, भूली हुई–जान–बूझकर भूली हुई। और यही नषा तुम भी तो हो महन्त सतीनाथ ! तुम जियो, बहुत दिन जियो और दुनिया की सारी अच्छी–अच्छी औरतों–लड़कियों को धोखा दो। दरअसल औरतें यही चाहती हैं, पर मुष्किल तो यह है कि उन पर यह नषा नहीं चढ़ पाता। मजहब, गरीबी और डर उन्हें अपनी ओर खींच लेता है, तभी वे झट बहार से अलग उदास खड़ी सबको बददुआएँ देने लगती हैं। हर जवान स्त्री–पुरूष से जलन खाने लगती है। खैर.....

मंदिर में संध्या पूजा शुरू होने को थी। आगे–आगे सतीनाथ, पीछे छोटी चम्पा अपने नाज–नक्ष और ठीक कर सीना ताने हुए। जैसे वह किसी देवस्थान अथवा मंदिर में नहीं, बल्कि किसी रंगषाला में प्रवेष कर रही हो। उसके मंदिर में पहुँचते–पहुँचते बड़े–बड़े धौंसे एक साथ गड़गड़ाहट बज उठे। दो षिष्य श्रृंगीनाद करने लगे। जगमोहन से झूलते हुए अने घंटे हवा में झूलते हुए बजाए जाने लगे। मंदिर के भीतर संगमरमर की ऊँची–सी वेदी, उस पर लोहे का बड़ा–सा चिमटा रखा हुआ, ढेरों फूल–मालाओं से पूजित। बगल में बड़े–से दीवट पर अनवरत जलता हुआ दीपक। और ऊपर सोने–जैसा चमकता हुआ छत्र। सहसा बाहर अनेक दीपक उसी दीपक से जल उठे। फिर सब गुरू गम्पनाथ के स्वर के साथ सहसा चिल्ला उठे–'अलख निरंजन ! नाथ जगावै जोग ! नाथ भगावै भोग !'

सब षिष्यों के साथ महन्त सतीनाथ ने भीतर वेदी के चौखटे पर अपना माथा झुकाया। सब झुक गए, सब–पर छोटी चम्पा जैसे कोई कौतुक देखती हुई खड़ी रह गई–अविचल, शान्त।

सब उठे, मंदिर की परिक्रमा करने लगे। किन्तु गुरू गम्पनाथ समाधिस्थ हो गए।

मंदिर के सामने छोटा–सा सीढ़ियोंदार पक्का सगरा था। और मंदिर के पीछे कुछ दूर पर मिट्टी और पत्थर की कई समाधियाँ बनी थीं। इधर–उधर फूल–पत्तियों की दो क्यारियाँ और कुछ बिखरे हुए पेड़–कटहल, नीम, पपीता, अनार, नींबू, संतरा, आम और अगस्त।

पर वहॉ की सबसे विषेष बात थी–अहिल्या की दो हाथ लम्बी मूर्ति, मंदिर और बाहर जाने के लिए दरवाजे के बीचों–बीच नंगी जमीन पर लेटी हुई थी–नीचे का आधा हिस्सा मिट्टी में गड़ा हुआ।

संध्या के समय उस अहिल्या की विराट् मूर्ति पर न फूल, न दीप।

छोटी चम्पा घूम–घूमकर देखती रही। गुरू गम्पनाथ की समाधि अब तक लगी हुई थी।

छोटी चम्पा ने सतीनाथ से पूछा, 'इस मंदिर में किसकी पूजा होती है हुजूर ?'

'वेदी पर स्थापित आदिगुरू गोरखनाथ के उस चिमटे की।'

तब तक अचानक गम्पनाथ जी की समाधि भंग हो गई। षिष्यों ने फिर एक स्वर में चिल्लाकर कहा, 'अलख.....अलख.....निरंजन ! भवभय भंजन।'

गुरू गम्पनाथ जी की नजर खुलकर छोटी चम्पा पर आ टिकी।

छोटी चम्पा ने आदाब किया।

गुरू ने अजब गम्भीरता से कहा, 'अवधूत प्रसन्न हों तुमसे ! उत्तम किया कि तुम यहॉ चली आईं।

पास रखे हुए बरतन से भस्म निकालकर चम्पा को देते हुए कहा, 'यह गुरू का प्रसाद लो और अपने माथे पर लगाकर चम्पा, पहले अपने को पवित्र करो !'

'मैं तो पाक–पवित्र हूॅ महाराज !' चम्पा ने कहा।

'यह तुम्हारे नष्वर शरीर का घमंड है। तुम अपनी आत्मा के विषय में नहीं जानतीं, जो तुममें बंदी है।'

'कैसी आत्मा महाराज ?'

'जो तुझे यहॉ ले आई है।'

'मगर मुझे तो महन्तजी ले आये हैं !

'कहॉ हैं महन्त ?'

सतीनाथ वहॉ से चले गये थे। षिष्य लोग सगरे पर जा बैठे थे। पूर्णमासी का चॉद आसमान में खिलकर चारों ओर जैसे अमृत बरसा रहा था।

गुरू ने कहा, 'महन्त सतीनाथ को तू नहीं जानती।' न तू अपने को जानती है।'

'महाराज, जी मैं अपने को खूब जानती हूॅ। इससे अधिक मुझे और जानने की कोई ख्वाहिष नहीं है।'

'आखिर क्यों ?'

'इसके अलावा मुझे किसी और पर इतबार नहीं।'

'आत्मा पर भी नहीं ?'

'आत्मा क्या है महराज ?'

'वही जो तुझमें बोल रहा है। वही जो तुझमें बिना जड़ के खड़ा है। जिसमें बिना फल के ही फूल लगता है। जिसमें न शाखा है न पत्र।'

छोटी चम्पा हॅस पड़ी।

'हॅसती हो ?'

'मैं आत्मा नहीं जानती।'

'तुममें वही आत्मा है।'

'मुझमें नहीं है।'

'तो तुम शैतान हो क्या ? आत्मा शैतान में नहीं होती !'

'कोई हर्ज नहीं महाराज ! जहॉ इंसान है, वहॉ शैतान रहेगा ही !'

'सुनो.....सुनो ! सतगुरू अगर चाहेंगे तो तुझे तुममें आत्मा दिखा देंगे। तुम खूब खिलकर नाचती–गाती हो न ! वह नाचने–गाने वाला कौन है ? वह तुम्हारे आत्मारूपी वृक्ष पर बैठा हुआ एक पक्षी है, जो बिना पैर के ही सदा तुझमें नृत्य कर रहा है, बिना हाथ के ही तुझमें ताल दे रहा है, बिना जीभ के ही तुझमें गाना गा रहा है, और यदि मैं चाहूॅ तो तुझमें दिखा सकता हूॅ। वही अदृष्य पक्षी तेरी इस कजरारी ऑखों में फड़फडा रहा है। वही तुझमें रास्ता ढूॅढ़ रह है। और तू उसे दाबकर अपने–आप में रखना चाहती है। खबरदार, अगर तुम अब हॅसी ! मैं उसे तुममें से निकाल सकता हूॅ। ऐसे.....ऐसे.....रूको मैं दिखाता हूॅ तुझे।

चम्पा चुप खड़ी रह गई। गम्पनाथ तेजी से दाईं ओर के कमरे में मुड़ा और दोनों हाथों में एक–एक जीवित सर्प लिये हुए सामने आ खड़ा हुआ।

'देखो, देखो इन सर्पों को। मैंने इनकी जीभ पकड़कर इसी तरह खींच ली है। और तब से ये बेहोष पड़े हैं।'

'पर हुजूर, मैं सॉप नहीं हूँ।'

गप्पनाथ लाल ऑखे करके बोला, आत्मज्ञानहीन स्त्री, तू इन्हीं सर्पों की तरह अचेतावस्था में है। तू जिसे अपना सुख मान रही है, वह तेरी मृत्यु है। तू जिसे अपना जीवन मानती है, वह तुझमें वे रोते हुए लोग हैं, जिनके संग तूने पापाचार किया है।'

छोटी चम्पा चुप, हारी–सी खड़ी रह गई। गम्पनाथ ने उसे सादर आसन दिया। उसके भोजन के लिए दूध और फल मॅगाया। हाथ पकड़े हुए सगरे की सीढ़ियों से पानी के पास ले गया।

'अपनी प्यासी मीन को पानी दो ! चलों अपनी ऑखें धोओ ! मल–मलकर मुख का सारा काजल और रंग–लेप धो डालो ! ऑखों की मछली को पानी में तैरने दो ! अपने मुख को दर्पण बना लो ! पैर खूब घिसकर धो डालो। ये पैर कमल के वृक्ष हैं। ये हाथ और साफ करो। चलो और पानी में डालो। पानी से अंजुरी भरो ! ये हाथ कमल के फूल हैं। और अब यह पानी पिओ ! वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी को आज पानी पिलाओ। और अब अंजुरी में इसी तरह पानी भरे मेरे साथ आओ !

छोटी चम्पा यंत्रवत गम्पनाथ की सारी आज्ञाओं का पालन करती रही। वह गऊ की तरह अंजुरी में पानी भरे हुए गम्पनाथ के संग मंदिर में जा खड़ी हुई।

'सुनो ! अपनी ऑखे मूँदो ! और जो तुम्हें सबसे अधिक पवित्र लगे, उसे प्रणाम कर यह पानी उस पर अर्ध्य कर दो ! देखो यह वेदी पर हमारे सतगुरू का चिमटा रखा हुआ है। तुम्हारी आत्मा पर जो तुम्हारे शरीर की इतनी ढेर–सी राख पड़ गई है, यह चिमटा उसे हटाकर तुममें आत्मा का प्रकाष करेगा। और यह देखो दीवार के चारों ओर की इन शक्तियों को ! यह हैं पवनसुत हनुमान !

यह हैं महाषक्तिमयी दुर्गा, यह काली, यह भैरव, यह सती, यह शंकर ! जो शक्ति तुझे आकर्षित करे, उस पर यह पानी डाल दो ! चलो !

भीतर देहरी पर छोटी चम्पा ऑख मूंदे, अंजुरी बॉधे हुए बड़ी देर तक अविचल खड़ी रही। फिर सहसा वह मंदिर के बार दौड़ी और अहिल्या की मूर्ति पर अंजुरी खोलकर, उसके पैरों पर गिर पड़ी।

'यह क्या किया ? क्या किया यह ?' गुरू ने दौड़कर छोटी चम्पा को उसकी बॉह पकड़कर जबरन उठा लिया। उसकी ऑखें ऑसुओं से तर थीं।

'यह क्या किया तूने ? इस मुर्ति पर आज तक किसी ने इस तरह नहीं किया। पता है, यह अहिल्या की मूर्ति है ?'

छोटी चम्पा सॅभलकर बोली, 'महाराज, मैंने सुना था, भगवान रामचन्दर ने अहिल्या को तार दिया था।'

गुरू ने बीच में ही अपनी आवाज बॉध ली–'सुनो.....सुनो। तुझे नहीं मालूम ! राम ने अहिल्या को तार दिया, ठीक है वह। पर यह मूर्ति अहिल्या का वही कलंक है जो कभी नहीं मेटा जा सकता। इसे सतगुरू मेट सकते हैं। यह पत्थर की मूर्ति संक्रान्ति की एक रात में खुद चलकर यहॉ हमारे सतगुरू की शरण में आयी थी। पर संयोगवष वह आदिषक्ति गुरू उसी संध्या अपना चिमटा यहॉ छोड़कर कहीं चले गये थे। और तब से यह जड़ मूर्ति यहॉ गिरी पड़ी है !'

चम्पा क्रोध से भर गई–'तुम्हारे सतगुरू उससे डर गये ! क्यों ? तुम भी तो उसी गुरू की ताकत हो, जैसाकि तुम खुद कहते हो ! फिर तुम क्यों नहीं इसके कलंक को मेट सके ?'

'सुनो, सुनो।' गुरू गम्पनाथ ने गंभीर स्वर में कहा, 'इसकी एक विधि है। पहले यह अपने कलंक को स्वीकार करे ! फिर आर्त होकर यह अपनी मुक्ति के लिए याचना करे। फिर मैं इसे मेट सकता हूँ।'

चम्पा हॅसी। बहुत जोर से पागलों की तरह हॅसी। और वहॉ से भागने लगी।

गुरू ने उसे पीछे से पकड़ लिया, 'तुम इस तरह क्यों हॅसती हो ?'

'तुम्हारी मूर्खता पर।'

'सावधान.....कुलटा.....पतिता !'

चम्पा इस बार और भी जोर से हॅसी और अपने को छुड़ाकर मंदिर से बाहर निकल गई।

दूसरे दिन सुबह सारे गोइन्दा में शोर मच गया कि छोटी चम्पा ने गुरू गम्पनाथजी का अपमान कर दिया, नाथजी के मंदिर का अपमान किया। उसने अहिल्या की उस मूर्ति की पूजा की और गुरू को मूर्ख कह दिया।

महाराज के समस्त षिष्य सतीनाथ की कोठी पर आये और उन्होंने बताया कि महाराज जी तभी से समाधि लगाये बैठे हैं–न निद्रा, न अन्न, न पानी।

छोटी चम्पा सतीनाथ के कमरे में अब तक सो रही थी। उसने रात बहुत पी ली थी।

गोइन्दा और आसपास के बहुत से लोग कोठी के दरवाजे पर इकट्ठे हो गये थे। सब विचलित थे।

उसी समय कोठी के भीतर से हाथ में फूल–पत्र लिए हुए सुभद्रा निकली और बेतहाषा दौड़ती हुई मंदिर की ओर भागी। लोग उनके पीछे दौड़े। नौकर–चाकर भी दौड़े

सुभद्रा अहिल्या की मूर्ति पर गिरकर अभुआने लगीं और जोर–जोर से चिल्लाकर कहने लगी–मैं हूँ अहिल्या ! मैं हूँ अहिल्या ! मुझको मेरे पति ने कलंकित किया। मुझको उस कोढ़ी भगवान ने पतित बनाया। मुझे तुमने, तुम लोगों ने, तुम्हारे विष्वास ने, धर्म ने कलंकित किया। आओ, आओ, आओ, मै हूँ अहिल्या, मैं हूँ अहिल्या ! लोगों की भीड़ मूर्ति के चारों ओर मंत्रमुग्ध–सी खड़ी रही। स्त्रियॉ भी आईं और हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं।

कोठी की सबसे बड़ी सुभद्राजी देवी पर आई हैं। लोग थर–थर कॉपने लगे।

सुभद्रा अभुआती हुई, मूर्ति पर अपने हाथ–पैर पीटती हुई, बाल बिखेरे, ऑखे लाल–लाल काढ़े हुए चिल्ला रही थीं–मैं हूँ अहिल्या रे ! अहिल्या मैं हूँ रे ! आ दाढ़ीजार गौतम ! आ, आ रे निगोड़ा इन्द्र ! आ रे तमाषबीनो ! आ ! मैं हूँ अहिल्या ! सुन मेरी कथा ! राम ने मुझे तारकर एक स्त्री बनाया ! पर उस निगोड़े गौतम को फिर पुरूष नहीं बनाया ! मैं उसके साथ रहने लगी। एक दिन उसने मुझसे कहा कि है तू तो वही अहिल्या ! वही अहिल्या रे ! जिसे इन्द्र ने .....जिसे इन्द्र ने ! हॉ, हॉ मैं वही अहिल्या हूँ रे ! मैने फिर क्या किया ? क्या किया मैंने कि मैंने.....अपने–आप से कहा कि सुनो पृथ्वी मॉ.....सुनो मॉ भगवती ! यदि मैं सती हूँ, निरपराध और सतवंती हूँ तो मैं फिर पत्थर की हो जाऊँ।

सुभद्रा अपनी तेज हॅसी से मूर्ति पर बिछकर लोटपोट हो गईं। सुनो ! मैं उसी क्षण पत्थर की हो गई। मैं यह वही अहिल्या हूँ रे ! मैं तब से, युगों से यहॉ चुपचाप पड़ी थी। यह घोर जंगल था। यहॉ केवल भयानक जीव–जन्तु रहते थे। यहॉ डाकू रहते थे–केवल डाकू, ऐल, आग्नेय, क्षुद्रक, सीरियन, शक, और हूण, गोर और गजन, पठान और मुगल, हिन्दू और मराठे, फिर सूद और पिंडारे ! पर मैं वही अहिल्या हूँ ! जहॉ की तहॉ !

लोगों की बढ़ती भीड़ से गुरू गम्पनाथ की समाधि टूट गई। वह बेचैन मंदिर के सामने घूमने लगे। महन्त सतीनाथ भीड़ को चीरकर सुभद्रा के सामने खड़े हुए, आज्ञा दी, 'ले चलो इसे कोठी में ! बॉध दो इसके हाथ पैर !'

पर कौन इस आज्ञा का पालन करे ?

किसकी हिम्मत कि सुभद्रा को आज स्पर्ष तक करे ! लाल–लाल विस्फारित ऑखें। शक्तिवर–से कॉपते हुए हाथ पैर ! ओजस्वी स्वर !

आज तक किसी ने नैपाल वाली, राणा परिवार की उस सुभद्रा बहू को नहीं देखा था। सब एकटक हाथ जोड़े उन्हें देख रहे थे। आज किसी हिम्मत कि उन्हें पकड़ ले !

सतीनाथ खड़ा देखता रह गया।

गुरू गम्पनाथ हारकर चुप हो गये थे।

सुभद्रा मूर्ति पर बिखरे वालों से सिर झुलाती हुई कहती जा रही थी–'इस मंदिर की नींव में मेरी चूड़ियॉ दबी हैं। इसकी दीवारों में मेरी हड्डियॉ हैं। और जो इसकी वेदी पर चिमटा रखा हुआ है, वह झूठ है, वह झूठ है।'

गुरू गम्पनाथ जी चिल्लाकर दौड़े। सतीनाथ ने बढ़कर आवेष में सुभद्रा का मुॅह नोच लेना चाहा, पर वह चण्डी–सी सुभद्रा किसी के हाथ न आ सकी। मूर्ति पर सिंहवासिनी–जैसी खड़ी हो गई, और ललकारती हुई बोलीं–

'ले मार ! अब कौन मारेगा मुझे ? ले मार ! अब कौन मारेगा मुझे ? गुरू गम्पनाथ ! उठा न अपने आदिगुरू का चिमटा ! मार न मुझे उसी से !'

उसी क्षण कोठी से दौड़ती हुई छोटी चम्पा आयी। उसे देखते ही सुभद्रा कटे वृक्ष की तरह मूर्ति से नीचे गिर पड़ी। चम्पा ने उसी क्षण सँभाल लिया।

कोठी में लाकर चम्पा ने उन्हें पुकारा तो उनकी बन्द ऑखें ऑसुओं का बॉध तोड़कर खुल गई।

सहज स्वर में बोली, 'तुमने मुझे जगाया ! तू मेरी बेटी है.....।'

और यह कहते–कहते चम्पा को अपने अंक में बॉध लिया। किवाड़ के बाहर से उस कोठी के सारे प्राणी–फूलनदेई, सूर्जमुखी और शर्वरी, नौकर–चाकर–सब झॉकने लगे।

सुभद्रा को घर–परिवार में नैपाली बहू की संज्ञा दी हुई थी।

सब परस्पर बातें करने लगीं कि नैपानी बहू का दिमाग ठीक हो गया। जरूर इस पतुरिया के हाथ में कोई जस है।

अगले तीन दिन तक नैपाली बहू लगातार सोती ही रही। चम्पा उन्हें जगाकर भोजन करा देती। और फिर पलंग पर लिटा देती लोग कहने लगे कि नैपाली बहू को पूर छः साल बाद ऐसी नींद आई है, नही तो अब तक वह रात को जरा–सा ही सो पाती थीं, शेष बैठी न जाने क्या अपने–आप से बातें करती रहती थीं। न उससे कभी कम, न कभी उससे ज्यादा।

उस दिन से नैपाली बहू को नया जीवन मिल गया। सब–कुछ बदला हुआ–बानी, बोली, स्वभाव, कर्म सब।

पर छोटी चम्पा का गुरू महाराज के प्रति वह व्यवहार और उससे भी अपूर्व अहिल्या की मूर्ति पर नैपाली बहू सुभद्रा का वह अभुआना तथा मन्दिर और चिमटे के प्रति उनके उद्‌गार, ये सब गोइन्दा के लिए कोई साधारण बातें नहीं थीं। तब से गुरू गम्पनाथजी की नींद हराम हो गई थी। बार–बार समाधि लगाकर षान्ति से बैठना चाहते थे, पर समाधि अब तब से लगती ही न थी। षिष्य अलग परेषान ! महन्त सतीनाथ की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। बाकायदा स्नान करके, माथे पर घूँघट डाले नैपाली बहू बहुत तड़के ही अहिल्या की मूर्ति की पूजा कर आती थीं। कोठी की इतनी टेढ़ी गृहस्थी में उनका अब इतना शान्त मानवीय भाव, कि लोग उन्हें अब देखते ही रह जाते थे।

सतीनाथ और गुरू गम्पनाथजी की ओर से इसका पूरा–पूरा इन्तजाम किया गया कि अहिल्या की उस मूर्ति पर कोई और न पूजा–पाठ करने पाए। इसके लिए दिन–रात पहरा दिया जाने लगा।

एक रात मन्दिर के साधु लोग आष्वस्त हो रात को सो गए तो सुबह देखा गया कि मूर्ति पर कई पूजा और चढ़ावे थे।

और ऐसा अक्सर होने लगा। मन्दिर में आने वाली स्त्रियॉ छिप–छिपकर अहिल्या की उस मूर्ति पर कुछ–न–कुछ अर्पण छोड़ ही जाती थीं।

बैसाख की पछियॉव दोपहर में बहुत तेज बह रही थीं। गुरू गम्पनाथ ने कोठी से छोटी चम्पा को बुला भेजा। मन्दिर में वह नंगे पैर आयी। मन्दिर के बाहर का सीमेंट का फर्ष धूप से जल रहा था।

छोटी चम्पा दौड़कर मन्दिर के बरामदे में जाने लगी। गुरू ने आज्ञा देकर बाहर ही उसे फर्ष पर रोक दिया। दो साधु मन्दिर के बाहरी दरवाजे पर तैनात खड़े हो गए।

चम्पा के पैर बाहर जलने लगे।

उसने पूछा, 'मुझे इसीलिए बुलाया था ?'

'हॉ, तुम्हारे पैर जो सदा नरम कालीन पर चलते हैं, उन्हें आज कुछ देर जलने दो।'

चम्पा चुप, हैरान ! वह छटपटाती हुई इधर–से–उधर घूमने लगी।

गुरू ने गम्भीर स्वर में कहा, 'जाओ अपनी अहिल्या की मूर्ति पर जाओ ! शायद वह मूर्ति ठण्डी हो !'

'खैर, कोई बात नहीं। तुम्हारी नीयत तुम्हें मुबारक हो महाराज !' यह कहकर चम्पा सगरे की ओर जाने लगी।

'रूको ! तुम अपने पैरों को उस सगरे में नहीं डाल सकतीं।'

'आखिर क्यों ?'

'सुनो !' गुरू ने चम्पा का हाथ पकड़कर उसे भीतर बरामदे में कर लिया।

'सुनो, तुम्हारे पैर जैसे अभी जल रहे थे न, उससे कहीं अधिक मेरे भीतर आग लगी हुई है। उसी दिन से, उसी क्षण से, जब तूने अहिल्या की मूर्ति को.....!'

गुरू के कॉपते–जलते होंठो से आगे के शब्द भस्म हो गए।

'तूने मेरा अपमान किया। कोई बात नहीं। सतगुरू मान–अपमान से परे हैं। वह ऐसी अदृष्य शक्ति हैं जो सबको छूकर चलता है।'

'क्या हुक्म है महाराज ? मुझे क्यों बुलाया ?'

'एक प्रार्थना है तुमसे !' गुरू महाराज ने कोमल स्वर में कहा, 'समझ लो बाई जान ! यह मैं कह रहा हूँ।'

'समझ रही हूँ हुजूर ! पर हुक्त तो सुनूँ भला !'

'हुक्म नहीं एक प्रार्थना !'

'क्यों शर्मिन्दा करते हैं महाराज ? बोलिए न ? बात क्या है ?'

'पहले कृपा कर मंजूर करो बाई ! पहले मुझसे हॉ करो बाई ! पहले मुझसे हॉ करो कि मैं जो तुम्हें दे रहा हूँ, उसे तुम मंजूर करोगी। हॉ, हॉ तुम्हें एक बेष–कीमती चीज देने जा रहा हूँ।'

'सुनूँ भी तो महाराज !'

गुरू महाराज बड़ी देर तक वेदी की ओर ध्यानावस्थित देखते रहे। फिर उसी दृष्टि से उन्होंने चम्पा की ऑखों को देखा, एक बॉधती हुई नजर से।

'सुनो, तुम साक्षात् शक्ति हो ! तुम्हारे पति यही सतगुरूनाथ हैं ! लो मैं इनका तुझे सुहाग देता हूँ।'

'नहीं–नहीं, महाराज ! मुझे किसी का सुहाग नहीं चाहिए !'

क्यों ? ऐसा क्यों ?' गुरू गम्पनाथ चम्पा को उसी दृष्टि से देखते रहे गए।

चम्पा ने कहा, 'मैं वेष्या हूँ, वेष्या ही रहूँगी। मुझे सुहाग से कोई दिलचस्पी नहीं, मेरा उससे कोई सरोकार नहीं। सुहाग मर्द का एक फरेब है महाराज ! एक ऐसा जाल जिसमें औरत एक बार फॅसकर ताजिन्दगी के लिए गुनहगार हो जाती है। सतवन्ती है, तो केले के पेड़ की तरह एक ही बार में खत्म। और यदि कहीं उसका पति उससे नाखुष, नाराज, तो उसकी किस्मत में पत्थर–ही–पत्थर !

गुरू ने कहा 'वह सुहाग इन्सान का है, यह ईष्वर का सुहाग है।'

चम्पा ने उत्तर दिया, 'यह ईष्वर उसी इन्सान का बनाया हुआ है सरकार ! दोनों में मुझे कोई फर्क नहीं दीखता हुजूर ! मुझे माफ कीजिए।'

'तुम मुझसे कुछ नाराज हो बाईजान !' गुरू ने कहा, 'अब खुष हो जाओ ! न सही सुहाग ! लो, इस संसार के नाथ का तुम धर्म स्वीकार करो !'

यह कहते–कहते गुरू गम्पनाथ ने छोटी चम्पा का हाथ पकड़ लिया, 'लो, माथे पर यह भभूत लगाओ ! सतगुरू तुम्हारी ओर देख रहे हैं चम्पा जान ! तुम्हारी किस्मत पर मैं बलिहारी जाता हूँ ! उठो.....देखो..... और बढ़ो।

'नहीं–नहीं, महाराज ! मुझे मेरे धर्म के अलावा और कोई धर्म नहीं चाहिए ! मुझे यह धर्म नहीं चाहिए !'

यह कहते–कहते चम्पा ने गुरू से अपना हाथ छुड़ा लिया।

'यह धर्म मुक्ति देता है।' गुरू ने गंभीर स्वर में कहा।

'नहीं, यह धर्म भय देता है।'

'यह अज्ञान है तेरा ! धर्म मनुष्य को बड़ा बनाता है।'

'नहीं, धर्म मनुष्य को छोटा बनाता है।'

चम्पा गंभीर खड़ी रही। फिर बोली, 'यह धर्म मुझे नहीं चाहिए। यह मुझमें भय पैदा करेगा। यह साबित करेगा मुझे कि मैं कुलटा हूँ, मैं नापाक हूँ।'

'नहीं। यह साबित करेगा तू पवित्र है, तू बड़ी है।'

'वह मैं हूँ। मैं अपने लिए वह हमेषा–हमेषा हूँ।'

चम्पा मुड़कर तेजी से जाने लगी। गुरू ने हाथ पकड़कर उसे बिठा लिया–'थोड़ी देर रूको ! मैं अभी आता हूँ।'

गुरू गम्पनाथ तेजी से अपने कमरे में गये–मन्दिर के दायें वाले कमरे में। हाथ में एक थैली लिए हुए लौटे और चम्पा के सामने थैली खोल दी–करीब ढाई–तीन सौ रूपये के नोट सामने बिखर गये।

'यह धन स्वीकार करो ! तुम्हें धन चाहिए न।'

'पर किस लिए यह धन ?'

'तुम्हारे लिए।'

'पर क्यों महाराज ?'

गुरू महाराज चुप चम्पा को देखते रहे।

चम्पा बोली, 'धन मेरे शरीर की ही कीमत हो सकता है। आपको मेरा शरीर चाहिए क्या ?

'नहीं, मुझे शरीर नहीं, तुम्हारा मन चाहिए मन !'

'पर हुजूर, मैं अपना मन नहीं बेचती।'

गुरू महाराज हाथ जोड़कर चम्पा से बोले 'मैं तुमसे तुम्हारा मन बेचने के लिए नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल तुम्हारा मन चाहता हूँ। जिस मन ने उस दिन अहिल्या की पूजा की है। जिस मन की शक्ति ने उस दिन नैपाली बहू सुभद्रा को यहॉ लाकर जगाया है।'

'नहीं–नहीं' मैं अपना वह मन किसी को नहीं दे सकती।' चम्पा बात काटकर बोली।

गुरू बोले, 'मन देने का नाटक तो तुम करती हो न ! तुम सिर्फ वही नाटक ही कर दो। मैं प्रसन्न हो जाऊँगा। सतगुरू संतुष्ट हो जाएँगे, नहीं तो..।'

चम्पा झट बोली, 'मैं वह नाटक भी नहीं कर सकती। मुझे माफी दी जाए महाराज !'

गुरू महाराज क्रोध से लाल हो उठे–'तो तुझे वह माफी नहीं दी जायेगी। नही ंतो यह सतगुरू का मन्दिर कॉप उठेगा। अहिल्या की जीत मेरे नाथ के सामने नहीं हो सकती। लोग नाथ को छोड़कर अहिल्या की पूजा करने लगें, यह असम्भव है।

छोटी चम्पा हतप्रभ चुप खड़ी रही।

परम आवेष में गुरू महाराज जी बोले, 'इस समय तू मेरे अधिकार में है मैं तुझे जिन्दा ही काटकर अपने इस शक्तिनाथ को चढ़ा दूँगा। क्या समझती है तू अपने–आपको ?'

'तो हुजूर आपका धर्म यही है ?' चम्पा बोली।

'मेरा धर्म है, अपने इस शक्तिनाथ की आज्ञा–पालन करना। बोल ! इस आदिषक्ति के आगे तू अपने–आपको समर्पित करती है कि नहीं ? बोल !' यह कहते–कहते गुरू ने छोटी चम्पा को मुँह के बल फर्ष पर झोंक दिया। उसके होठों से खून बहने लगा। फिर भी उसने कहा, 'नहीं.....नहीं.....नहीं !'

गुरू ने झपटकर उसकी जुल्फ पकड़ ली और हाथ–पैरों से उसे मारने लगे। चम्पा के मुँह से न चीख निकली न पुकार। वह गुरू के निर्मम प्रहार से वहीं बेहोष हो गई। गुरू ने दौड़कर अपना त्रिषूल लिया और जैसे वह बेहोष चम्पा पर उसका मृत्यु–प्रहार करने चले, दौड़े हुए आकर महन्त सतीनाथ ने सहसा गुरू के हाथ पकड़ लिए। क्रोध में कॉपते हुए हाथ से त्रिषूल छूटकर झनझनाता हुआ फर्ष पर आ गिरा।

गुरू गम्पनाथ की धधकती हुई ऑखें जिस क्षण सतीनाथ की ऑखों से मिलीं, वहॉ उस क्षण मानों बिजली कौंध गई।

गुरू ने गरजते हुए कहा, 'बोल सतीनाथ ! गोइन्दा में कौन रहेगा ? यह कि मैं ?'

सतीनाथ चुप !

'बोल, उत्तर दे ! यहॉ मैं रहूँगा या यह वेष्या ?'

'आप रहेंगे महाराज !' सतीनाथ ने उत्तर दिया।

'तो सुन ! इसे इसी अवस्था में अपनी गाड़ी पर लादकर गोइन्दा से बहुत दूर फेंक आ। इस नागिन से मैं तेरा सम्बन्ध बहुत से ही तोड़ देना चाहता था, पर तूने इसे बॉध रखा है। तुझे याद है, मैं इसके लिए गोरखपुर की उस सराय में भी गया था। मैं सोचता था यह निर्बल स्त्री है। पर यह कालसर्पिणी है सर्पिणी ! सावधान, अगर यह यहॉ और रही तो गोइन्दा को यह डस खाएगी !'

सतीनाथ ने पूछा, 'महाराज आपने इसे यहॉ किस लिए बुलाया था ?'

गुरू ने उत्तर दिया, 'इसने यहॉ अहिल्या की मूर्ति को जगाया है, उसी को मैंने इसके हाथ से खत्म कराना चाहा था। इसे शक्तिनाथ के धर्म को स्वीकार कराके मैं अहिल्या की पूजा को सदा के लिए समाप्त करना चाहता था। पर यह नहीं मानी। यह अमंगल है। यह साक्षात् विनाष है। इससे तुम्हारा अस्तित्व, तुम्हारी महन्त गद्दी सदा के लिए छिन जाने का भय है।'

उसी समय छोटी चम्पा को होष आ गया।

वह लड़खड़ाकर उठी और मन्दिर के खम्बे को पकड़कर सँभल गई–हुजूर मैं यही कहती थी कि धर्म इन्सान में भय जगाता है।.....

शुक्रिया ! बहुत–बहुत शुक्रिया–आदाबर्ज !'

यह कहकर छोटी चम्पा धीरे–धीरे मंदिर से बाहर जाने लगी।

पीछे–पीछे सतीनाथ !

और उसके पीछे गुरू गम्पनाथ की गरजती हुई आवाज–'सावधान' आज रात को यह गोइन्दा में न रहने पाये !'

मन्दिर के बाहर निकलकर चम्पा एक जगह विवष होकर बैठ गई। प्यास से उसका गला चटख रहा था। कोठी में से दौड़ती हुई वही नैपाली बहू सुभद्रा आयीं और उन्होंने चम्पा को अपनी बाहुओं में भर लिया।

संध्या होने से पहले ही नैपाली बहू स्वयं मन्दिर में गयी। गुरू गम्पनाथ से गंभीरता से बोलीं, 'आपने मेरी बेटी को इस तरह क्यों मारा ?'

गुरू ने उत्तर दिया, 'अधर्मी को दण्ड मिलना ही चाहिए !'

'कौन अधर्मी नहीं, मैं उसे देखना चाहती हूँ !' नैपाली बहू ने कहा।

'यह अखंड ज्योति जलने वाला दीपक, जिसे हमारे आदि गुरू ने जलाया है। यह सतगुरू का चिपटा। और मैं, जिसका अंष हूँ !

'तो आप धर्म–अंष हैं। और आपने तभी उस बेगुनाह को इस चिमटे और अखंड दीप के सामने इस तरह मारा है !'

गुरू महाराज नैपाली बहू को समझाते हुए बोले, 'आपके हित के लिए ! मेरा क्या ? यदि आप लोगों के लिए वह वेष्या, वह पतिता, वह कुलटा इतनी ही प्रिय है तो मैं आज ही गोइन्दा छोड़ कर चला जाऊँगा ! पर याद रखना, यह मंदिर तो उजड़ेगा ही, किन्तु इसके पहले सतीनाथ की वह कोठी, दस गॉवों की वह पक्की सीर और इतने चढ़ावे–दान सब मिट जाएँगे। मेरा क्या बिगड़ेगा ? आदिगुरू शक्ति–नाथ का क्या ? जहॉ ही गुरू का यह अमूल्य, शक्ति–सिन्धु चिमटा पड़ेगा और यह दीप जलेगा, वहीं मेरा स्वर्गवास बन जाएगा !'

सामने दौड़े हुए महन्त सतीनाथ आये, हाथ जोड़कर बोले, 'किन्तु ऐसा क्यों होगा ?'

'इस स्त्री से पूछो !' गुरू ने उपेक्षा से नैपाली बहू को देखा।

सतीनाथ के लिए सारी स्थिति साफ थी।

उसने सीधे कहा, 'आज रात को चम्पा यहॉ से चली जाएगी।'

'इतनी चोट खाई हुई हालत में ?' नैपाली बहू ने पूछा।

'हॉ, जाना ही होगा उसे ! गुरू महाराज की जैसी इच्छा।'

'क्या कोई ऐसा रास्ता भी है कि चम्पा यहॉ कुछ दिन और रूक जाए ? नैपाली बहू ने कोमल स्वर में कहा।

'हॉ है एक रास्ता !' गुरू महाराज बोले, 'तुम आज से अहिल्या की मूर्ति पर पूजा नहीं करोगी ।'

'ठीक है, नहीं करूँगी।'

सिर झुकाए नैपाली बहू कोठी में लौट गई। सतीनाथ ने देखा, गुरू महाराज अब कितने प्रसन्न हैं !

रात को अपने कमरे में नैपाली बहू ने चिकनी मिट्टी से अहिल्या की छोटी–सी प्रतिमा बनायी और उस पर फूल–अक्षत् चढ़ाकर उन्होंने प्रतिमा को प्रणाम किया।

छोटी चम्पा के शरीर पर नैपाली बहू ने अपनी ओर से दवादारू तो की ही। वह जो सुर्जमुखी थी, उसने भी चम्पा की सेवा की और अपने पति कुँजन से उसने कहा कि तुम कोठी के बाहर बाई जान की बहुत खबरदारी से देख–रेख करना।

सुर्जमुखी बड़ी विचित्र थी।

वह सतीनाथ से अपने कर्म की जिम्मेदारी समझती थी। किन्तु अपना धर्म वह अपने पति कुँजन से ही लगाती थी। उसने छोटी चम्पा से एक दिन शरम से पानी–पानी होते हुए कहा था कि–मेरे वो कुँजन जिस दिन पढ़कर पास हो जाएँगे, मैं उनके संग कोठी से कहीं चली जाऊँगी। मैं अपने उनसे रेलवई की ही नौकरी कराऊँगी। क्वाटर मिलेगा, मैं उनके संग मजे से वहॉ रहूँगी। हॉ नही तो.....!

और तभी इस सुर्जमुखी से बड़ी दोनों बहुएँ, फुलदेई और शर्वरी थोड़ी ईर्ष्या रखती थीं। उन्होंने अपने तथाकथित पतियों को आज तक कभी देखा नहीं हैं। और जब से जमींदारी टूटी है, वे लोग अब तक शायद ढूँढने से भी नहीं मिल सकते थे।

नैपाली बहू सुभद्रा की कथा ही और थी। वह सतीनाथ के संग प्रेमकर नैपाल राज से भागकर आयी थीं। किन्तु गोइन्दा में आकर दूसरे साल जब गोरखपुर के लाट साहब का इधर दौरा हुआ और उसने महन्त की तहकीकात की, फलतः उसी समय कानून से बचने के लिए सुभद्रा काषीनाथ की पत्नी कहलाई–उससे बड़ी चोट लगी उन्हें।

नेपाली बहू जब सो गई, और धीरे–धीरे पूरी कोठी जब सो गई, तो छोटी चम्पा ने सुर्जमुखी को धीरे से जगाया और उसके कान में कुछ कहा। सुर्जमुखी ने बड़ी सावधानी से जाकर कुँजन को जगाया। कुँजन ने अपने साथ कोठी के एक नौकर को लिया और झटपट उसके सिर पर छोटी चम्पा का बक्स और बिस्तर रखा और चम्पा के साथ आधी रात के समय कोठी से बाहर निकल आया।

गोइन्दा से बाहर निकलकर कुँजन ने चम्पा से पूछा, 'किधर जाओगी ?'

'किसी तरफ भी ! बस चलना ही है।' चम्पा ने कहा।

और तीनों ठीक पूरब दिषा की ओर जाने वाली डगर से आगे चल पड़े। दो कोस पैदल चलकर वे तीनों एक बड़े–से गॉव के बाग में पहुँचे। बाग में कोई बारात टिकी थी। गैस जल रहे थे और शामियाने के नीचे कत्थक का नाच हो रहा था।

कत्थक नाच नाचकर गा रहा था–तीन महीना गरमी के दिनवां, टप टप चुए पसिनवा, बलम रसबेनियां डुला दे !

चम्पा उसी बाग में रूक गई और वहीं से वह कुँजन और नौकर को विदा देने लगी।

कुँजन ने पूछा, 'यहॉ से कहॉ जाओगी बाईजान जान–पहचान है क्या ?'

'हॉ–हॉ, मेरी फिक्र मत करो। सब मेरी जान–पहचान के हैं।'

'सच ?'

'हॉ सच ! राम कसम !'

चम्पा मुस्करा पड़ी।

कुँजन लौटने लगा, तो चम्पा ने उसके हाथ पर दस रूपये का नोट रखा दिया–'दो रूपये नौकर को दे देना..... ।'

'और बाकी ?'

'तुम कोई किताब खरीद लेना ! कागज–कलम ले लेना !'

चम्पा मुस्कराती हुई उन्हें देखने लगी और वे दोनों बाग के कोने से अपने उसी रास्ते से लौटने लगे।

बाग पार करके कुँजन ने खड़े होकर देखा गैसबत्ती लिये हुए बराती लोग चम्पा के चारों ओर घिर गये हैं। और वह सबके बीच में अकेली खड़ी हॅस–हॅस कर बातें कर रही है।

आम के पेड़ बेचकर शराब ! मॉ, यह अनर्थ है ! राजा बाबू ने ठकुरी मॉ से कहा और मॉ यह दुखद समाचार सुन–सुनकर उदास हो उठती थीं। वह क्या कहें फूल से ! क्या समझाएँ राजा को, वह भी सही ही कहता है। पुरखों के हाथ के लगाये हुए देईपारा बाग के वे आम के पेड़, जिसे वे देवता समझते थे। पर फूल बाबू क्या करें ! शराब उनके लिए इतनी आवष्यक हो गई थी कि बिना उसके न उस बेचारे को नींद आती थी, न उससे भोजन ही किया जाता था। जिस दिन उसे पीने को नहीं मिलती वह गंगाबेली से बहुत कटु होकर लड़ता और घर की सारी शांति भंग हो जाती है।

ठकुरी मॉ जानती थीं कि अगर फूल देषी बुटवलिया शराब पियेगा तो उसका अनर्थ हो जायेगा।

'तो उतनी महॅगी शराब के लिए क्या आम के वे चार पेड़ बिकेंगे ? बोलो मॉ ! गॉव जवार के लोग हमें क्या कहेंगे ? तुम्हें मैंने बता दिया है, तुम जो चाहो, वैसी आज्ञा दो !'

'और आप लोग मुझे क्या कहेंगे ? या क्या कहते होंगे !' गंगाबेली ठकुरी मॉ और राजा बाबू के बीच में आ खड़ी हुई।

'तुझे क्या कहेंगे बहू ! भला तेरा इसमें क्या दोष ? सब भाग का दोष है।' ठकुरी मॉ ने उदास होकर कहा।

ठकुरी मॉ को इतना उदास गंगाबेली ने पहली बार देखा, और वह डर–सी गई। बोली, 'मॉ जी ! आम के पेड़ नहीं बिकेंगे ! यह मेरी जिम्मेदारी है। इस घर में मुसीबत ढाने वाली मैं हूँ। मैं आज उन्हीं से इसका कोई रास्ता पूछती हूँ–आखिर यह क्या है ? इसकी दवा क्या है ?'

कॉपते होठों पर यही शब्द लिये हुए गंगाबेली बाहर दीवानखाने में चली गई।

दोपहर का वक्त था। फूल बाबू बिना कुछ खाए–पिए पलंग पर चित पड़े थे।

गंगाबेली पलंग के नीचे बैठकर फूल बाबू के बिखरे बालों को सहलाती हुई भरे जजबात से बोली, 'बोलो तुम्हें क्या हो गया है ? इसीलिए तुम मुझे यहॉ अपनी सुहागिन बनाकर लाए थे ? मुझे क्या मालूम भला ! तुम जो बताओगे मैं वही जानूँगी न ! बोलो.....!

फूल बाबू ने कहा, 'तो वे आम के पेड़ नहीं बिकेंगे! तो मेरे लिए शराब नहीं आयेगी !'

'आयेगी क्यों नहीं ? जरूर आयेगी मेरे मालिक !'

यह कहते–कहते गंगाबेली ने अपने हाथ की दो सोने की चूड़ियॉ निकाल लीं और राजा बाबू के पास गयी, 'भइया जी तुम्हें मेरी कसम, किसी से न कहना, यह लो, बहुत अच्छी शराब मॅगाओ।'

'भाभी !' राजा भइया ठगा–सा रह गया।

गंगाबेली ऑखों से ऑसू पोंछती हुई फिर दीवानखाने में लौट गई।

फूल बाबू को उठाती हुई बोली, 'चलो, भीतर अपने कमरे में चलो। तुम जो–जो चाहोगे मैं तुम्हारे लिए वही करूँगी। पर मैं तुम्हें इस तरह बिखरने नहीं दूंगी। मेरी जिन्दगी क्या है ! इसके बनाने वाले, इसे इज्जत देने वाले तुम्हीं हो मेरे खुदाबन्द ! मेरे मुसव्विर !'

'बेकार की बकवास मत करो !' फूलबाबू ने कहा, और चुपचाप वह गंगाबेली के साथ भीतर कमरे में चला आया।

फूल को पलंग पर बिठाती हुई गंगाबेली ने बड़े दर्द से कहा, ' मेरे एहसास, मेरी सच्चाई तुम्हें अब बकवास लगती है। आखिर क्यों ? मुझे आप बताते क्यों नहीं ?'

'क्या बताऊँ मैं ? तुममें कहीं अच्छी छोटी चम्पा थी।' फूल बाबू में कुछ मय उठा। उसकी प्रकाशहीन ऑखों में जैसे आग जल उठी।

'ठीक है !' गंगाबेली ने कहा, 'फिर तुमने मुझे चम्पा से गंगाबेली क्यों बनाया ? मैं भी चम्पा ही रहती। मैं भी.....।'

फूल बाबू ने कुछ उत्तर न दिया।

तड़पकर गंगाबेली ने कहा, 'तो अभी मेरे नाम में आग लगा दो ! फूंक दो गंगाबेली को ! जला दो इसे।'

गंगाबेली फफककर रो पड़ी।

फूल बाबू वैरागी–सा पलंग पर लेट गया।

'जला दो मुझे मैं खाक हो जाऊँ, और मगहर की उसी समाधि पर मुझे बिखेर आओ ! पर इस नाचीज के लिए तुम खुद मत जलो ! मैं तुम्हारी हूँ। पर मैं तुम्हारी किस्मत बिगाड़ने वाली नहीं हूँ। तुम्हारे जी में जो आए तुम खुशी से करो, पर अपना इतना हसीन दिलफरेब मन मत बिगाड़ो ! चम्पा ही क्या, चम्पा से भी कहीं कितनी अच्छी लड़कियॉ तुम्हें इस जिन्दगी में मिल सकती हैं, पर यह मन नहीं मिल सकता। इस तरह अपनी सेहत मत बिगाड़ो.....।'

फूल बाबू गुस्से से लाल हो गया, बन्द करो यह लेक्चर ! इसीलिए यहॉ कमरे में ले आई हो !'

'अच्छा, अच्छा माफ करो मुझे ! अभी तुम्हारी शराब आ जाती है।'

'पर तुम तो वही गंगाबेली रहोगी न !'

नहीं, वह गंगाबेली नहीं रहेगी। जो तुम नहीं चाहोगे वह हरगिज नहीं रहेगा।'

यह कहकर गंगाबेली ने अपना बक्स खोला। आईने को सामने कर वह वही श्रंगार करने लगी। ऑखों में वही लम्बा काजल। होंठों पर वही सुर्खी। गालों पर वही तेज रंग। वही कपड़े और चोली ! वही.....।

पर मुद्दई आईना जैसे संग नहीं दे रहा है। आईना आज धोखा दे रहा है। हाय, वह आईना तो गोरखपुर की उस सराय में ही छूट गया है। वह आईना इस तरह आज धोखा दे रहा है। अच्छा आने दो शराब ! उसी से आज मैं इस आईने को धो डालूँगी। नहीं तो इसे फर्श पर तोड़कर दुकड़े–टुकड़े कर डालूंगी। मैं आज टूटॅगी और किसी तरह से भी सही, मैं अपनी उस जगमगाहट को वापस ले आऊँगी। वही रोशनी, वही दिलकश नशा, वही फरेब, वही बेदर्द चितवन और नाज ! आने दो शराब ! न सही सागरो–मीना, न सही मैखाना, पर मैं हारूँगी नहीं। मैं क्यों हारूँ ? मेरी जिन्दगी मेरे हाथ से ही छूटकर इस तरह चली जाए, यह नामुमकिन है। मैं हूँ,

और रहूँगी। इसमें मेरे फूल बाबू का क्या कसूर ? यह सब मेरे एहसास का, मेरी नासमझी का कसूर है। वह मेरी समझ की सरासर गलती थी। मैं पत्नी बनाकर नहीं लाई गयी थी। मैं वही बड़ी चम्पा थी, जिसे बड़ी चम्पा ही रहना होगा। नहीं तो मुझसे बड़ी, मुझसे अच्छी वही छोटी चम्पा है। जरूर है, वह मेरी बहिना !

अंगोछे में शराब की दो बोतल छिपाए राजा बाबू आये। गंगाबेली को उस श्रंगार में देखकर वह आश्चर्यचकित रह गए।

'जाओ मुझे माफ करना भइया ! बहुत–बहुत शुक्रिया !' यह कहकर गंगाबेली ने किवाड़ बन्द कर ली।

'लो उठो ! पियो.....देखती हूँ आज तुम कितना पीते हो !'

'मगर साथ तुम भी पिओगी ?'

'पियूँगी ! लो पिलाओ अपने हाथों से ! जितना पिलाओगे मैं आज पियूँगी ! मैं आज तुम्हारे हाथों से जिन्दगी–भर के लिए बेहोश हो जाना चाहती हूँ। पर पिलाने वाले, यह जरूर याद रखना, मैं तेरी सुहागिन हूँ। और यह घर है, सराय नहीं। यह मंदिर है, कोई होटल नहीं।'

'यही तो मैं तुझसे भुलवा देना चाहता हूँ।' गंगाबेली के हाथ से शराब का गिलास लेते हुए फूल बाबू ने कहा, लो पहले तुम पियो !' और शराब का गिलास उसने गंगाबेली के होठों पर रख दिया।

गंगाबेली ऑखें मूँदे पीने लगी।

फूल बाबू स्वयं पीते–पीते बोला, 'यही मैं चाहता था। मैं सिर्फ तुमको चाहता था, तुम्हारी उसी चम्पा को चाहता हूँ मैं। और कुछ नहीं' कुछ नहीं.....'

'पर इस घर में अब वह मुमकिन है क्या ?' गंगाबेली ऑख मूँदे कॉपती हुई बोली, 'देखों, मैं अब वही चम्पा हूँ न ! लो मुझे जकड़कर उसी तरह अपनी बॉहों में बॉधो ! बॉधो न ! लो मैं उसी तरह तुम्हारे आगोश में हूँ।'

फूल बाबू ने मुँह ऊपर उठाते हुए धीरे से कहा, 'गंगाबेली !'

'कौन गंगाबेली ? कैसी गंगाबेली ? गंगाबेली अब यहॉ नहीं है। मैं वही बड़ी चम्पा हूँ। यहॉ मेरे अलावा और कोई दूसरी औरत नहीं है। लो और पियो.....मुझे और पिलाओ मेरे महबूब ! मेरे साकी !'

'नहीं, नहीं गंगाबेली, अब बस ! तुम बहुत अच्छी हो.....हसीन, लाजवाब !'

'नहीं ! हसीन लाजवाब तो चम्पा है। गंगाबेली तो गंवार न थी। उसमें ऐसा क्या था ! छिः गंगाबेली, सीधी हयादार !'

'तुम रूठ गई ! मुझे माफ करो.....मैं तेरे पैरों पर गिरता हूँ।

गंगाबेली फूल बाबू के कॉपते हाथों की पहुँच से अपने पैर दूर करती हुई बोली, 'अब यहां कैसा कसूर और माफी ! लो यह मेरे होंठ, मेरे सुर्ख गाल, अपनी बड़ी चम्पा का यह हुस्न !'

फूल बाबू पर नशा चढ़ आया था। ऑखे मुँद रही थीं। जबान लड़खड़ा रही थी। हाथ–पैर बेकाबू हो रहे थे।

'सुनो, मेरी जान ! मैं पीकर झूठ नहीं बोलता।'

'हॉ–हॉ, बोलों, मैं सुन नहीं हूँ।'

'तुम चम्पा नहीं। तुम गंगाबेली हो ! तुम फूल बाबू को इस तरह धोखा नहीं दे सकतीं। तुम मेरे सामने से ....हट जाओ.....। मेरे साामने.....उसी.....बड़ी चम्पा को आने दो ! वह सूरत.....वह अदा.....वह भोली–भाली बातें.....तुम्हीं बताओ.....प्यार आये न.....आये।'

और फूल बाबू ने टूटते हुए स्वर में गाने की कोशिश की, 'तुम मेरे पास होती हो गोया, जब कोई दूसरा न होता !'

यह गाते–गाते फूल बाबू औंधे मुँह पलंग के नीचे गिर पड़ा। गंगाबेली ने किसी तरह सम्भालकर फूल बाबू को पलंग पर किया। और खुद शराब पीते–पीते वहीं फर्श पर न जाने कब बेहोश हो गई। शेष सारी शराब फर्श पर लुढ़ककर फैल गयी। उसके मुँह के नीचे शराब, बिखरे बालों में शराब, और खुली चोली शराब से तर !

संध्या आयी।

रात हुई, बहू गंगाबेली का कमरा न खुला।

मेंहदिया कई बार किवाड़ पर आवाज देकर चली गई। राजा बाबू की पत्नी धानीवाली ने पुकारा। फिर चिंतित मॉ आयीं और बहू को पुकारने लगीं।

गंगाबेली जगी।

झटपट उसने अपने कपड़े बदले। उजड़े, आवारा कमरे को ठीक किया। हाथ–मुँह धोया, कुल्ला किया।

और किवाड़ खोलकर गंगाबेली ठकुरी माँ के चरणों पर गिर पड़ी।

ठकुरी माँ ने गंगाबेली को उठाकर अपने अंक में लगा लिया– 'घबराओ नहीं बहू ! धीरज रखो ! मैं देखती हूँ न !'

ठकुरी माँ ने फूल को बरबस जगाया–'उठ चल, हाथ–मुँह धो ! अब भूख लगी है कि नहीं ! पढ़–लिखकर यही होना था न !'

यंत्रवत फूल बाबू ने माँ की आज्ञा का पालन किया।

भोजन करा चुकने के बाद ठकुरी माँ ने आँगन के बीचों–बीच खड़ी होकर कहा, 'इसी मन से इतनी अच्छी बहू ले आए ! यही तेरी मेम है ! गऊ–जैसी बहू को खूँटे में बाँधकर अब उसका गला घोंटना चाहता है। उसे रंडी–पतुरिया समझ रखा है क्या ? कान खोलकर सुन लो फूल बाबू, तुम शराब पियो, चाहे जो कुछ पियो । पर तुम इस घर की इज्जत – मर्यादा नहीं पी सकते !'

सब चुप ! पूरा घर–आँगन निस्तब्ध होकर ठकुरी माँ को सुन रहा था।

'अपनी पहली पत्नी बड़ी बबुनी के सामने तुम्हारे ये चोंचले कहाँ थे ! उस क्रोधनी से तो तुम आँख नहीं मिला सकते थे। सच है, टेढ़े चन्द्रमा से राहु भी डरता है। पूरनमासी की चाँद–जैसी मेरी बहू को तू क्या करना चाहता है रे ? बोल.....क्या चाहता है तू ? आज बता मुझे, नही तो.....।'

ठकुरी माँ की आँखें सहसा उमड़ आई। धैर्य का बाँध एकाएक टूट गया।

फूल बता, तू क्या चाहता है ? बता मेरे बेटे !'

'माँ, मैं कुछ नहीं चाहता। मुझे माफ कर दीजिए।'

'अच्छा तो सुन ! तू बहू के संग कहीं दूर घूम–फिर आ। तीर्थ–यात्रा तू क्या करेगा ! पर तू कहीं बहू के साथ कुछ दिन के लिए जरूर चला जा। रूपये मैं दूँगी। जैसे भी हो, मैं इन्तजाम करूँगी। पता है तुझे ! तेरी यह दषा सुन–सुनकर बड़ी बबुनी मारे खुषी के अपने षिवाले में अखंड हरिकीर्तन कराती है और कहती है कि मैं अपने शंकर भगवान से उन्हें भस्म करा दूँगी। अभी क्या, आगे देखना, मैं क्या–क्या कराती हूँ उसका ! जिन्दा मेंढ़ा बनाकर यदि खूँटे में न बँधवा दिया तो बबुनी मेरा नाम नहीं !'

ठकुरी माँ के सामने से हटकर फूल बाबू बाहर जाकर सो गया।

बैसाख बीत रहा था।

धीरे–धीरे पुरवाई बह रही थी। गंगाबेली ने अपने उदास, दम घोंटने वाले कमरे की ऊपरी खिड़की खोल दी। पलंग पर खड़ी होकर खिड़की के चौखटे पर मुँह रखे गंगाबेली चाँदनी भरी रात में बखिरा ताल को देखने लगी।

उसी तरह उसने ऊबकर चार दिन पहले दोपहर को भी देखा था, और उससे दो दिन पहले भी सुबह–ही–सुबह ! किन्तु जब–जब उसने उस विषाल गहन–गंभीर झील को देखा, उसे तब–तब वह झील उदास लगी। झील के असंख्य पक्षी कहाँ गये ? कहाँ उड़ गये वे सुरखाब, अकास–हंसा, सोनापतारी और धौलाबकुल ?

इस समय चाँदनी में स्नान करती हुई झील मानो गंगाबेली से कहने लगी–'वे सब पक्षी मेरे मेहमान थे। वे महज कुछ ही दिन के लिए यहाँ आये थे। वे परदेषी अब चले गए। अब वे फिर एक वर्ष बाद अपने ही दिन पर मेरे पास आयेंगे। यह ताल एक विरह है। अब वे परदेषी चले गए। अब यहाँ गर्मी और उमस में कौन रहे ! यह घुटन वे प्रेमी क्यों सहें ? उन्हें जहाँ आनन्द मिलेगा, वे वहीं उड़ जाएँगे। वे पंखधारी परदेषी मेहमान उन्हें किसी से क्या बंधन, क्या मोह ! उत्तर में उनके लिए वह हिमालय है। उसकी हरी–हरी घाटियाँ हैं और पष्चिम में अरब सागर है, प्रषान्त बालू–तल ! और पूरब में बंगाल की खाड़ी है–नन्दनबन का वह डेल्टा है।'

उसी बीच तालाब के उस पार क्रौंच का जोड़ा बोला। गंगाबेली का ध्यान भंग हो गया और अब इस पार का क्रौंच का जोड़ा बोलने लगा।

ये आपस में क्या बातें कर रहे हैं ? गंगाबेली फिर सोचने लगी, वे लोग शायद झील को जगा रहे हैं कि जागो, रात खत्म होने वाली है।

हे ईष्वर ! मुझे अगले जन्म में परिन्दा बनाना। और उसके बाद अगर तुम चाहो तो मुझे और जन्म चाहे न देना।

हे ईष्वर ! तुम मेरी इस बात का खास ख्याल रखना कि मैं ऐसा परिन्दा होऊॅ, जिसके पास केवल पर–ही–पर हों, न एहसास हो, न विष्वास। मगर हे ईष्वर ! मैं तुझमें अपने लिए अभी यह विष्वास जरूर जगाना चाहती हूॅ कि मुझे अपने इस जन्म से मोह है। ऐसा क्यों, तुम्हीं जानो। पर ईष्वर, मेरे अगले जन्म में कहीं ऐसा न हो। अगर मुझमें मेरी आत्मा–जैसी कोई चीज है तो उसे मेरे परिन्दे में मत डालना। महज मेरे प्राण को उसमें डालना, बस !

सुबह गंगाबेली जब अपने कमरे से बाहर निकली तो उसे ऐसा लगा था कि बाहर खड़े फूल बाबू ने उसे पुकारा है। पर फूल बाबू तो अब तक बाहर सो रहा है।

'जा मेंहदिया, उन्हें जगा ला।'

'और जो वह मुझे मार बैठें !'

'मेरे लिए सह लेना।'

दो घड़ी दिन चढ़ आया था। मेंहदिया फूल बाबू को बाहर जगाने गयी। फूल बाबू जगे।

'बाबू, बहू जी बुला रही हैं।'

बुलाने दे । जा भाग यहॉ से। जाती है कि नहीं, सुअर कहीं की।'

मेंहदिया उल्टे पॉव भाग निकली। भगवान का शुक्र, मारा नहीं चप्पल फेंककर।

'बहूजी ! वह नहीं आयेंगे।'

'अच्छी बात है। जाने दे। अब अपने राम का क्या !'

स्नान करके गंगाबेली ने आज अपना सितार निकाला। दुर्गाजी की वह छोटी–सी मूर्ति निकाली।

'बंदापरवर ! अब इस नाचीज को इस बेवफा दुनिया से उठा ले। बहुत गलतियॉ ऐसी होती हैं, जिनकी माफी इन्सान तो क्या ईष्वर के पास भी नहीं मॉ दुर्गा ! तेरी ताकत कमजोर मूसा को बचा सकती है, और खुदी से पागल फिरऊन को गर्के–दरिया कर सकती है। मैं क्या, बड़े–बड़े बादषाहों को वह ठोकर खिला सकती है। तू मगर मेरे फूल बाबू को माफ कर। उन्हें खुष रख उन्हें राहत मिले। उनकी जिन्दगी नियामत हो। मैं कमजोर..... नाचीज.....और बेवफा.....मुझे बेषक न माफ कर ! मगर उन्हें, मेरे सिरताज को तू राहत दे ! उनके पाक दामन से मेरी गंदी साया को हटा ले !'

भरी ऑखों से गंगाबेली ने साज को देखा। तार पूरे थे। सितार को सिर ऑखों से लगाकर उस पर अपना माथा टेका, फिर उसे सुर में मिलाया।

और उसकी भरी ऑखें कहीं खो गईं। कहीं से तारों पर उठकर मिज़राब वाली ऊॅगली के पवित्र स्पर्ष से वह कहीं और उड़ने लगी–ऐसी दुनिया में जो सचमुच बड़ी है, सचमुच जो हसीन और पाक है, और जो कभी मिटने वाली नहीं है, जिसकी राहत कभी कम नहीं होती।

गंगाबेली धीरे–धीरे मालकोंस बजाने लगी.....सा....ग...म....ध....नी.....सा। वही देवराग, जिसे कभी मॉ पार्वती ने अपने पति शंकर भगवान् को जगाने के लिए, अपने प्रति उन्हें आकर्षित करने और उन सुरों में अपने–आपको समर्पित करने के लिए गया था। वही देवराग मालकोंस आज पहली बार गंगाबेली के सितार से फूट पड़ा। उसकी मिजराब वाली उॅगली रह–रहकर कॉप उठती थी, जैसे उसका छोर कहीं और है, और उसे गति देने वाला भी कोई और है।

मालकोंस की गमक.....भीड़.....मूर्च्छनामयी झंकारें और स्पन्दनमय झालों से जैसे सारे घर में कुछ खिंच गया। सुरताल के ताने–बाने से हवा रसरंजित होकर जैसे कुछ देर के लिए थम गई।

धानीवाली बहू, ठकुरी मॉ हाथ जोड़े उस अद्भुत संगीत से मुत्रमुग्ध हो गईं। मेंहदिया पास–पड़ोस में दोड़ी हुई औरतों को खबर दे आई।

ब्राह्म्ण औरतें और लड़कियॉ दौड़–दौड़कर आने लगीं।

यह कैसा पावन स्पर्ष देने वाला संगीत है ! यह मन–प्राण को कैसे बेधता जा रहा है। बहू के चेहरे पर मुस्कान है.....ऑखें कैसी बरस रही हैं।

बाहर से फूल बाबू आये और उसी क्षण मिजराब वाली ऊॅगली कॉप गयी और सितार का मध्यतार झन्न से टूट गया, जैसे मंदिर का स्वर्णकलष टूट कर जमीन पर गिरा हो।

औरतें चली गयीं। ठकुरी मॉ गद्गद् होकर देवतन बाबा के कमरे में माथा टेकने लगी।

गंगाबेली सितार के टूटे तार को अपलक मौन निहारती रहीं। फूल बाबू ने जैसे मारते हुए कहा, 'मजलिस में गाने–बजाने की कहीं आदत जाएगी।'

गंगाबेली चुप रही। सितार उसी तरह हाथ में थामें, जैसे वह अब भी कुछ बजा रही हो।

फूल बाबू सामने आ खड़े हुए, 'मुझे दो यह सितार।'

गंगाबेली ने उसे छाती से लगा लिया और पंचम वाले तार पर अपना होंठ रखकर बोली, 'सब कुछ दे चुकी, पर मैं यह टूटा साज किसी को न दूँगी।'

'तूने मुझे दिया ही क्या ?'

'ठीक कहते हैं आप। मेरे पास ऐसा था ही क्या ?'

यह कहकर गंगाबेली शान्त हो गई।

दोपहर को फूल बाबू ने तैयार होकर कहा, 'गोरखपुर जा रहा हूँ।'

गंगाबेली वैरागिनी–सी अविचल बैठी रही।

उस रात को अकस्मात जिस बारात में छोटी चम्पा जा शामिल हुई, वह बारात लोहाडीह के बाबू की थी। षिष्टाचार और मड़वा नाचकर उस बारात के संग छोटी चम्पा मगहर के पास लोहाडीह के लिए रवाना हुई।

बाबू का दूल्हा बी0ए0 में पढ़ता था। दुपहरी मनाने के लिए दुल्हा–दुल्हन का डोला एक गॉव में उतरा। बारात घने छायादार बरगद के पेंड़ के नीचे रूकी और दूल्हा–दुल्हन का डोला पास के एक छप्पर के मड़हे में रखा गया।

छोटी चम्पा अपनी रूकी बैलगाड़ी पर ही बैठी रही। उसने देखा, दूल्हा किस तरह सबसे ऑख बचाकर चुपके से दुल्हन के डोले में घुस जाता है। ओहार पड़ा दुल्हन का डोला हिलकर सहसा कॉप उठता है और चन्द लमहे में ही दुल्हा मुंह का पसीना पोंछता हुए दुल्हन के डोले से बाहर निकल आता है। दुल्हन के संग जाती हुई नौकरानी को दुल्हा अपने पास बुलाता है और उसे दो रूपये इनाम देता है।

यह क्या है ? छोटी चम्पा मुस्करा पड़ी। यह कौन सा मजहब है ! दूल्हा दुलहिन की पवित्रता, जिसके लिए वह षिष्टाचार में सेहरा गाकर आयी है, वह कहॉ है ? वे दुआऍं, वह मॉगी हुई पाक मुराद, वे मंगल–गान कैसे हैं ? गॉव की उन सुहागिन औरतों ने जो गाया था कि हे चॉद–सूरज, मैं तुझसे सुहाग मॉगती हूँ। हे गौरा–पार्वती, तू अपनी तरह सुहागिन के ऑचल में अपने पूत की तरह चॉद–सूरज–सा पूत देना। झूठ, सब झूठ।

छी–छी–छी। छोटी चम्पा का मुँह तिक्त हो आया। यही वह सुहाग है। यही वह लाज है ! स्वामी कार्तिकेय का जन्म ऐसे ही हुआ था ! छोटी चम्पा की ऑखों के सामने सराय नाच गई। गली–सड़क के वे कुत्ते नाच गए केवल शरीर.....केवल वासना.....केवल नंगी भूख.....।

लोहाडीह पहुँचकर छोटी चम्पा को दूसरी साई मिल गई। बारात नाई जाति की थी। दूल्हा केवल पॉच साल का। दुल्हन तीन साल की। मंडप में ब्याह के वक्त अबोध दूल्हा–दुल्हन आपस में खेल खेलने लगे।

वाह–वाह ! यह है शंकर–पार्वती का ब्याह ! छोटी चम्पा खुषी से खिल गयी। उसने बढ़कर नन्हें मुन्ने दूल्हा–दुल्हन को अपने दाऍं–बाऍं अंक में उठा लिया। और नाच–नाकर गाने लगी–'हुए दो लाल दषरथ के, मुकद्दर हो तो ऐसा हो।'

छोटी चम्पा ने अपने मन में कहा–अगर मैं दुआ दे सकती हूँ तो तुम लोग मेरी दुआऍं लो ! यह शादी जिस्म का खेल नहीं है, यह कुछ और है। वह है, जिसके लिए पषु–पक्षी से अलग इंसान का जन्म लिया है। जिसके बीच में पहले मजहब है, फिर जजबात है, फिर हया है, फिर स्त्री–पुरूष के शरीर के लिए इज्जत है।

इस बारात के बाद दूसरे ही दिन छोटी चम्पा को एक और कायस्थ की बारात में शामिल होना पड़ा, लड़की की ओर से। लड़के की बारात कहीं तराई से आयी थी और उधर से पहाड़ी रंडी का नाच था। खूब धूम–धाम की बारात थी। लड़की वाले खूब खुषहाल थे। लड़की के पिता गोरखपुर में कलक्टर के पेषकार थे।

छोटी चम्पा ने देखा कि शादी के बाद महफिल में पहड़ी रंडी खूब उछल–उछलकर नाचती रही, पर किसी ने उसका एक भी गाना न सुना। सब शराब पीते रहे। यहॉ तक कि दूल्हा भी और सब आपस में गालियॉ बकते रहे।

रंडी के पास भी इज्जत ?

ताज्जुब है ! पहाड़ी रंडी उस महफिल से भगी और छोटी चम्पा के साथ आ रूकी।

जो कुछ भी परिचय था, दोनों ने एक–दूसरे को दिया। और तभी छोटी चम्पा का वह नाम–पता सुनते ही पहाड़ी रंडी ने उसको बताया कि उसे चार दिन पहले एक साहबजादे मिले थे जो शायद आपकी ही तलाष में घूम रहे थे।

'आपकी यानी मेरी, यानी छोटी चम्पा की तलाष में ?'

'जी हॉ, आपके मजनू हैं।'

'मेरे मजनू ?' छोटी चम्पा हॅसकर बोली, 'मगर मैं ऐसी लैला हूं कि जिसके मजनू ने आज तक जन्म ही नहीं लिया, 'बल्कि उसकी पैदाइष के लिए कोई मॉ तैयार ही नहीं हुई।'

पर दोपहर तक मजाक सच निकला।

छोटी चम्पा आराम से पलंग पर लेटी हुई थी। सिरहाने बोतल और गिलास। साजिन्दे ने इत्तिला दी कि कोई फूल बाबू आये हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।

छोटी चम्पा कुछ देर तक चुप सोचती रह गई। फिर लम्बी सॉस लेकर उसने कहा, 'जाओ उनसे कहो, बाईजी आराम कर रही हैं। एक घंटे बाद वह मिल सकेंगी।'

पर छोटी चम्पा का जी खुद न माना। उसने थोड़ी ही देर बाद फूल को अन्दर बुला लिया।

उसने एसे आदाब किया, 'जैसे फूल बाबू कोई अपिरिचत हों।

छोटी चम्पा अजब गम्भीर बनी रही। उसने अपनी ओर से कोई बात न शुरू की। सिर्फ उसने यह गौर किया कि फूल बाबू इतना दुबला हो गया है। इसका चेहरा, इसकी ऑखें खाली–खाली–सी हैं।

और फूल बाबू भी उदास चुप बैठा रहा–छोटी चम्पा को देखता हुआ।

'जनाब कुछ शौक फरमाइए !' चम्पा ने कहा नहीं कि फूल बाबू भूखे भेड़िये की तरह सिरहाने रखी 'बियर' की बोतल पर टूट पड़ा।

न अदब न लिहाज, न वक्त न जगह की शराफत, न तर्ज न तरीका, फूल बाबू समूची बोतल को मुॅह पर लगाकर ढकाढक उसे पीने लगा !

फूल में जान आ गई। बिना मुॅह पोंछे सिगरेट दागकर बोला, 'अब सुनो मेरी जान ! तुम्हारी जिया तो बिलकुल बेकार निकलीं।'

इतनी देर में छोटी चम्पा आदि से अन्त तक सब समझ गई। फूल की ऑखों में वह सब खिंचा हुआ था, जो वह देईपारा से अपने दिल में लाया था। छोटी चम्पा के सामने उसकी प्यारी जिया–बड़ी चम्पा का चेहरा उग आया। जेठ महीने की तेज गरमी से सारा कमरा यूॅ ही तप रहा था। फूल की उपस्थिति से वह और घुटने लगा।

छोटी चम्पा अजब ढंग से भाव बदलकर बिलकुल शराबी के गुस्से में बोली, 'कहॉ के साहबजादे हैं आप ? मैं आपको कतई नहीं पहचानती। बोलो कौन हो तुम ?'

'अरे ! मैं वही फूल बाबू हूॅ।'

'कौन ?'

'तुम्हारी जिया बड़ी चम्पा का.....।'

'हॉ–हॉ कौन ?'

'पति !'

'ओह ! पति कहने में शर्म आती है ! यहॉ कैसे आये ?'

'अरे भाई सुनो तो.....मैं कहता हूॅ.....अरे !' फूल बाबू छोटी चम्पा का वह अपूर्व रूप देखकर कुछ समझ नहीं पा रहा था। उसकी ऑख और जबान साथ नहीं दे पा रही थीं।

फूल ने कहा, 'मैं तुम्हारी तलाष में आज कितने दिन से घूम रहा हूॅ। कहॉ देईपारा, कहॉ गोइन्दा ! इस लू–गरमी में पैदल सफर ! फिर वह गॉव और न जाने कितने गॉव ! फिर लोहाडीह और.....।'

'बकवास बन्द करो। मेरे पास फिजूल का वक्त नहीं है।'

'यह क्या कह रही हो चम्पा ? तुम्हें होष है न ?'

'जी जनाबआली, मुझे होष है ! जो खुद बेहोष है, वही दूसरों के लिए ऐसा बेवकूफी का सवाल करता है।' चम्पा फिर तेज स्वर में बोली, 'मैंने कह दिया, मैं तुम्हें नहीं पहचानती।'

'पर मैं तो पहचानता हूॅ।'

तुम जैसे यहॉ मेरे पास बीसों रोज आते हैं। मैं उन्हें रास्ता दिखाती हूॅ और वे सीधे कान दबाये हुए उस रास्ते से चले जाते हैं। समझे ! चले जाओ यहॉ से !'

'पर मैं.....!' फूल बाबू छोटी चम्पा को देखता ही रह गया।

'हॉ तुम। मुझे अपने संग ले जाना चाहते हो ! यही न ?'

'हॉ।'

'सुनो कान खोलकर ! मैं तुम–जैसे जलील क्या, ईष्वर के भी संग नहीं रहना चाहती। किसी भी मर्द के संग नहीं रहना चाहती। मैं तुम–जैसे मर्द से महज पीकदान धुलवाती हूॅ और उनके हाथ से जूतियॉ पहनती हूं।'

'खामोष !' तो फूल बाबू तिलमिला उठा।

'ओह ! तो तुममें अभी इज्जत बाकी है ! ताज्जुब है !'

'तुम क्या समझती हो अपने को ?'

'षहंषाह ! कान पकड़वाकर मैं तुझे अभी यहॉ से निकलवा सकती हूं।'

'तेरी यह हिम्मत !'

'जनाब ! मैं तेरी रखैल नहीं। न तेरी बेवकूफ सुहागिन हूॅ। ने तेरे हाथ का घरौंदा हूँ। मैं 'मैं' हूॅ, तेरी कठपुतली नहीं। बेषर्म जलील ! दोजख के कुत्ते !'

फूल बाबू मारने के लिए दौड़ा। साजिन्दों ने जाकर तब तक फूल को पकड़ लिया।

'बॉध दो इसके हाथ और यहीं मुर्गा बना दो इसे !'

फूल साजिन्दों के हाथ में घिर गया और वह छोटी चम्पा के सामने हाथ जोड़ने लगा।

छोटी चम्पा तड़प उठी, 'हाथ जोड़ो जाकर उस देवता के, जिसे तुम जीप में बिठाकर अपने गॉव ले गए। जाकर उसके कदमों पर गिरो जिसके पास माफी है, जजबात हैं।'

छोटी चम्पा ने साजिन्दों को दूर हटा दिया।

'देख लिया मैं क्या हूॅ ! मैं सराय की वह छोटी चम्पा ही नहीं, कुछ और भी हूॅ। खबरदार, जो फिर कभी मेरी ओर ऑख उठाकर देखा !'

फूल बाबू का तस्वीरी चेहरा बिलकुल उतर गया।

वह सिर झुकाए कमरे से बाहर निकलने लगा।

छोटी चम्पा ने बढ़कर टोका, 'सुनो फूल बाबू ! मैं बेवफा हूॅ न ! यही मेरी जात है। मगर इस जात में मेरी वह 'जिया' नहीं है, जिसे तुम अपनी खुषकिस्मती से सुहागिन बनाकर ले गए हो ! वह सचमुच हिन्दू ब्राहम्णी है। वह सचमुच औरत है। मैं तुझे यहॉ आने के लिए कभी नहीं माफ करती, मगर वह तुझे जरूर माफ करेगी।'

'तुझसे मतलब ?' फूल बाबू ने गुस्सा पीकर कहा।

'हॉ तुझसे तो कोई मतलब नहीं। यह ठीक है। मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि तुम्हारा कोई मतलब मुझसे न हो। मैंने एक इंसान सराय की जिन्दगी में रहकर देखा है, बेशुमार इन्सान अब बाहर घूमकर देख रही हूॅ। यह सिर्फ मेरी ताकत है, तुम लोगों की नहीं। मेरी जिया–वह मेरी मासूम बड़ी चम्पा मन है, तुम भी मन हो। मैं नहीं, क्योंकि मुझे मालूम है, इससे ज्यादा मैं और कुछ नहीं पाने जा रही हूॅ। और कुछ पाने की न मेरी ख्वाहिश ही है। इस जिन्दगी में मेरा शरीर है, शायद अगली जिन्दगी में मेरा मन जिये। खैर.....पर तुमने जो इस तरह हासिल किया है, उसमें यह भटकन देखकर मैं अपने आपे में न रही। मगर मैं खुश हूॅ इसके लिए।'

फूल बाबू वहॉ से चला गया था। मगर छोटी चम्पा न जाने किससे अपनी वे बातें करती ही रही।

साजिन्दे ने सहसा आकर बताया कि शिष्टाचार के नाच के लिए उसे झट तैयार हो जाना है।

'ठीक है, यह लो मैं तैयार हूॅ।

छोटी चम्पा ने मुॅह धोया। जलती हुई ऑखों में न जाने कितने पानी के छींटे दिए। पेशवाज पहने और महफिल में जा खड़ी हुई।

पहाड़ी रंडी का नाम सन्तोला जान था–नौतनावां की रहने वाली थी। खूब उछल–उछलकर नाचती थी। बारातियों को छोटी चम्पा के सामने उसका नाच नहीं जॅचा, किन्तु चम्पा को वह बहुत अच्छी लगी, जैसे कोई बेवकूफ दोस्त !

पिछली रात की मुलाकात में ही सन्तोला जान ने अपने विषय में सब–कुछ बता दिया–कुछ न छिपाया। कैसी बेवकूफ ! उसने पच्चीस साल की इतनी–सी उमर में पॉच बार विवाह किये हैं। यह क्या तमाशा है ! यह कैसा बेमानी मोह !

बारात की विदाई के समय पहाड़ी रंडी ने चम्पा से, अपने संग नौतनवां चलने के लिए प्रार्थना की। उसने बताया कि उधर अभी समाज–कल्याण का कानून नहीं पहुॅचा है। न कभी पहुॅचेगा। वहॉ घर बसे हैं, कहीं कोठे नहीं हैं। वहॉ कोई अलग नहीं है, सब आपस में खुलेआम मिले हैं। और सबसे बड़ी बात, यह वहॉ बुरा भी नहीं माना जाता।

छोटी चम्पा ने उसे अपनी तरफ की बाबत बताया था कि उसे कोठों और घरों में कोई फर्क नहीं दीख पड़ता। मर्द तो वही हैं, फिर चाहे कोठे हों चाहे घर।

छोटी चम्पा के सामने कई जगह से नाच की साई मिल रही थीं उसने सन्तोला जान से कहा, 'तुम नौतनवॉ जाकर क्या करोगी ? शरीर के पेशे से बढ़कर शरीर का हुनर सीखो, नहीं तो यह शरीर तुम्हारा कब तक साथ देगा !

यह लो नाच की साई और खूब कमाओ ! कमाने का ढंग सीखो। मर्द की जात से अपनी ईमानदारी दूर रखो। ये दोनों दो अलग चीजें हैं। याद रखना इसे।'

छोटी चम्पा ने उसे श्रंगार और नाज–नक्श के अपने ढंग सिखाए। कुछ अपने नए कपड़े और रंग–ढंग दिए। कुछ फिल्मी गाने और नाच।

अपने साथ से उसे विदा देती हुई चम्पा बोली, 'याद रखना, मर्द की जात औरत के शरीर की इज्जत कभी नहीं करती। उसकी यह आदत नहीं रह गई। वह यह कतई भूल गया है कि इस शरीर के भीतर भी कुछ है। इसलिए जो कुछ तुम्हारे भीतर है, उसे तुम किसी के सामने कभी न जाहिर होने देना, नहीं तो वह पूरा ठग लेगा।'

नई साई पाकर छोटी चम्पा वहॉ से मगहर बाजार में आई। वहॉ उसकी भेंट सराय के उसी कल्लन से हुई। कल्लन अब नैपाल की तरफ से गॉजा और चरस लाने का कारोबार करता है। उसके संग सराय की दो रंडियॉ भी वह नया काम करती हैं–साधुनी और तीर्थयात्री के भेष में रहकर।

कल्लन ने छोटी चम्पा को यह भी बताया कि उस गाड़ी से सारे स्टेशनों पर छोड़ी हुई वे रंडियॉ फिर गोरखपुर में वापस पहुॅच गई हैं और सारे गोरखपुर के मुहल्लों में बिखर गई हैं।

'यह बहुत अच्छा हुआ।' छोटी चम्पा खूब हॅसी।

कल्लन अब बड़े ठाठ से था। खूब रूपये कमा रहा था वह। उसकी अटैची में तरह–तरह के भेष थे–साधु के, साहूकार के, किसान और तीर्थयात्री के।

'तुम्हारी साथ वाली वे कहॉ हैं ?' छोटी चम्पा ने पूछा।

'तुमसे क्या छिपाना ! वे आज खलीलाबाद से यहॉ पहुॅच रही हैं। मैं उन्हीं के इन्तजार में यहॉ हूॅ। आज से चार दिन पहले वे नौतनवॉ से राप्ती नदी पार कर चल पड़ी हैं।'

रात के आठ बजे पैसेंजर ट्रेन से वे दोनों रंडियॉ साधुनी के भेष में मगहर स्टेशन पर उतरी। कल्लन उन्हें संग लिए हुए मोतीदास की धर्मशाला में आया, यहॉ छोटी चम्पा उनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

छोटी चम्पा ने उन्हें पहचाना–वही दोनों रंडियाँ श्यामा और गौहरजान। क्या रूप–रंग बदला है उन्होंने ! कोई इतबार कर सकता है ? छोटी चम्पा को हँसी आ गई उन्हें देखकर। पर उन्हें असली रूप में देखकर उसका मन भी अजीब सा हो गया। नंगे पैरों में बिवाइयॉ। मुॅह बिलकुल खाक स्याह। बोली–बानी सब बदली हुई। उनकी झोली में दस–दस सेर से भी ज्यादा गॉजा और चरस का ढेर। कल्लन ने झटपट माल को ठेकेदार के हाथ बेच दिया–ढाईसौ रूपये में। सौ रूपये श्यामा के, सौ रूपये गौहरजान और पचास रूपये अपने। श्यामा और गौहर ने छोटी चम्पा को बताया–यह क्या जिन्दगी है ! अठारह दिन में ये सौ रूपये मिले। बीसों मील पैदल यात्रा–तराई में, जहॉ से वह सौदा मिला, उसके लिए उन्हें ऊपर से कितनी कीमत देनी पड़ी है ! वही शरीर, तिस पर बेईमानी, झूठ और प्रपंच और चौबीस घंटे खतरा।

छोटी चम्पा ने देखा, उन रंडियों के शरीर भी संग छोड़ रहे हैं। न उस शरीर की देखभाल, न इज्जत, न सेवा।

'फिर आगे क्या होना ? चम्पा ने पूछा।

'पता नहीं !' उन्होंने बताया।

'और यह कल्लन ?'

'अब यह कल्लन भी वह नहीं है। रखैल की तरह गालियॉ देता है, जानवरों की तरह कभी–कभी मार देता है।'

'क्यों रे कल्लन, ऐसा ?' छोटी चम्पा ने कहा।

'क्या करूँ बाईजान, मुझे दिन–रात डर लगा रहता है, इसीलिए दिमाग कभी–कभी काबू में नहीं रहता।'

श्यामा और गौहरजान बहुत दिनों बाद अपने अनुकूल फिर अच्छे कपड़े पहन छोटी चम्पा के साथ तॉगे पर बैठकर मगहर के बाहर कल्हनपुर ब्लाक डेवलेपमेन्ट की ओर चलीं। वहॉ ब्लाक में सामुदायिक विकास योजना की ओर से कोई जलसा हो रहा था। वहॉ प्लानिंग अफसर के सामने एक सांस्कृतिक कार्यक्रम होना था। तमाम आसपास की जनता, स्त्री–पुरूष वहॉ इकट्ठे थे। छोटी चम्पा का वहीं नाच–गाने का प्रोग्राम था।

'तुम लोग भी आज नाचो !' छोटी चम्पा ने श्यामा और गौहर से कहा, 'रूपये भी मिलेंगे और इनाम भी।'

पर ये दोनों विवश थीं। उन्हें अब नाच–गाना बिलकुल भूल गया है। न वह गला रहा, न वे हाथ, पैर पेशा ही जब बदल गया। तो वे भी बदल गईं। अब उसकी आंखों में न यह कटारी–मार चितवन रही न वे नाज–नक्श, जिस पर एक लमहे के लिए भटकी हुई हवा भी बल खा जाती थी।

साढ़े नौ बजे रात से ब्लाक दफ्तर के सामने बड़े–से शामियाने में पहले प्लानिंग अफसर ने भारत के सांस्कृतिक मनोरंजन पर बहुत बढ़िया–सा भाषण दिया–खूब जोरों से तालियॉ पिटीं, फिर छोटी चम्पा का नाच शुरू हुआ। वही गाना–'अपने राजा से नैना लडैबे हमारा कोई का करिहैं !'

फिर धकाधक चलताऊ गरमामरम फिल्मी गीत और वही तेजतर्राक नाच, जिसमें चम्पा इधर देहात में आकर और भी माहिर हो गई थी।

नाच खूब अपनी तेजी पर था।

उसी समय मगहर के थानेदार दो कॉस्टेबल सहित वहॉ तेजी से आये और कल्लन के साथ ही श्यामा और गौहरजान को झट हिरासत में लेने लगे।

छोटी चम्पा ने नाच रोक दिया।

'यह क्या जुल्म हुजूर ! इनका कसूर क्या है ?' छोटी चम्पा ने अफसरों के सामने खड़ी होकर पूछा।

थानेदार ने कहा, 'ठेकेदार थाने में खड़ा है। ये गांजा–चरस बेचने वाली मुजरिम हैं।'

'पर हुजूरआली, ये तो.....' सहसा कल्लन ने चम्पा को बहुत तेज ऑख मारी। चम्पा चुप देखती रह गई। वे तीनों पुलिस की हिरासत में कस्बे की ओर चले जा रहे थे।

फूल बाबू के देईपारा से जाने के दूसरे दिन ही गंगाबेली की तबीयत बहुत खराब हो गई। गरमी के वे भयानक दिन, उस पर चौबीस घंटे के भीतर महज शराब–शरीर आखिर क्या करे ! और वह शरीर जिसे जन्म से लेकर आज तक महज भुगतना ही पड़ा हो। वह शरीर, जिसके भीतर का मन और प्राण स्वप्न देखते–ही–देखते अपने हाथ से ही घायल हुआ हो ! तो वह क्या करें !

अगले दिन शाम को जब गंगाबेली की तबीयत कुछ सॅभली, रात को उसने किसी तरह सितार में दुर्गाजी की मूर्ति बॉधी और उसे अंक में लिये हुए ताल के किनारे गयी। सितार और मूर्ति को उसने बार–बार अपनी ऑखें से लगाया, माथे के छुआ, फिर उसे ताल में खड़े होकर विसर्जन दिया।

सितार में बॅधी हुई मॉ दुर्गा की वह अमूल्य मूर्ति सितार के ऊपर चमकती रही। सितार डूबा नहीं। पानी की सतह पर तैरता रहा।

गंगाबेली घुटने तक पानी में खड़ी हुई पानी के तेज हिलकोरों से सितार को दूर करती हुई अपने–आप से बोली, 'जाओ मेरे संगी–साथी, मेरी मॉ जाओ, अब मैं अपने–आपसे आजाद होना चाहती हूँ। अब तक की जिन्दगी मैंने दूसरों के लिए जी, अब कुछ बाकी दिन अपने लिए जिऊँगी। तुम लोगों के साथ अपनी जिन्दगी जीने से मुझे डर लगा रहता था–अब से मैं निडर हो गई मॉ ! अब मेरे संग कुछ नहीं रहा, अब मैं अपने–आप ही संगी–साथी हूँ। मॉ मुझे माफ करना, मैं आज तक तुझे बिना अन्न–जल, पूजा–पाठ के अपने संग बेवकूफी में ही बॉधे रही। प्यासे ने भी तुझे प्यासा रखा–इस गुनाह की कोई माफी नहीं ! कोई माफी नहीं ! जाओ मेरे साज ! मेरी हया ! मेरी गजल, मेरे मुसव्विर.....अलविदा !

अलविदा ! !

ताल से जैसे ही गंगाबेली बाहर निकलकर गॉव की ओर मुड़ी, उसने देखा पूरब की ओर से कोई स्त्री सफेद वस्त्र पहने हाथ में त्रिशूल लिये हुए उसकी ओर आ रही थी।

पास आकर उसने कहा, 'सुखी रहो ! मैं वही बड़ी बबुनी हूॅ। मुझे सब पता है। सब पता था। मैं भी तो उसी की ही सुहागिन थी। मैं उसकी सारी प्रकृति जानती हूॅ। वह क्या चाहता है, इसे कोई नहीं जानता। वह खुद भी शायद इसे नहीं जानता। आओ चलो तुम मेरे साथ रहो। तुम मेरी छोटी बहन की तरह हो। तुम्हें क्या पता, मैं उसे खूब जानती हूॅ। उसकी रग–रग को जानती हूॅ। उसके अहंकार को भगवान् का यह त्रिशूल काटेगा। उसके अधर्म को शंकर भगवान् देखेंगे। तुम मत घबराओ ! चलो तुम मेरे संग रहो। मैं दिखाऊॅगी उसका तमाशा ! वह क्या समझता है अपने–आपको !'

'मैं कुछ नहीं जानती !' गंगाबेली ने कहा, 'मुझे और कुछ नहीं चाहिए। अब किसी और का क्या सहारा ! ! अब तो कुछ नहीं बचा है मेरे पास। कोई डर नहीं है अब तो ! न मेरे पास कोई ईश्वर है, न उसका बनाया हुआ कोई आदमी। न मैं किसी को कोई कसूर देती हूॅ, ने मेरे पास किसी के लिए कोई शिकवा–शिकायत है।'

'तुम सीधी, शरीफ हो ! यही तो वह नहीं चाहता।' बड़ी बबुनी ने कहा, 'उसे तो ऐसी औरत चाहिए, जो उसकी छाती पर मूॅग दले !'

'पता नहीं।'

यह कहकर गंगाबेली आगे बढ़ी।

बड़ी बबुनी के हाथ से त्रिशूल जमीन पर गिर पड़ा। बड़े स्नेह से गंगाबेली का हाथ पकड़कर उसने कहा, 'फिर कहॉ जाओगी तुम ?'

'पता नहीं।'

'मेरे साथ नहीं रह सकतीं ?'

'शुक्रिया ! मैं अब एकदम से गायब हो जाना चाहती हूॅ, ताकि किसी से मेरी भेंट न हो !'

बड़ी बबुनी रो उठी, गंगाबेली का वह मुंह देखकर–'बहन, मैं अगर तुम्हारे कोई काम आ सकूॅ, मैं अपने को धन्य समझूॅगी।'

'लेकिन आपकी हमदर्दी मेरे माथे से लगकर बदनाम होगी। लोग उसका और ही मतलब लगाएंगे। आप क्यों बदनाम हों मेरे लिए !'

बड़ी बबुनी सिर झुकाए खड़ी रही। गंगाबेली ने कहा, 'अब मुझे कोई सहारा नहीं चाहिए। अब मैं आजाद हूॅ। वह देखिए ताल में, मैं अपना आखिरी मोह दफनाने आई थी। अब मैं दुनिया की सबसे बड़ी खुशकिस्मतवर औरत हूॅ।'

गंगाबेली फिर चुपचाप आगे बढ़ गई। बड़ी बबुनी उसे पहुॅचाने गॉव के बाग तक आयी, फिर उसी ताल के किनारे लौट आई, जहॉ उसका त्रिशूल गिरा था। त्रिशूल उठाकर उसने देखा–सितार में कुछ बॅधा हुआ है। शायद वह कोई राज है !

बड़ी बबुनी फॉड़ बॉधकर ताल में तैर गई। सितार को पाकर देखा–उसमें मजह दुर्गाजी की एक मूर्ति बॅधी है। बबुनी डर गई। उसका त्रिशूल ताल के किनारे जैसे सर्प होकर फुंकार उठा। सितार जैसे किसी दुधमुॅहे बच्चे की लाश हो, जिसे छूकर बबुनी सिहर उठी।

लोहे का वजनी त्रिशूल में झटपट उस सितार बॉधकर बड़ी बबुनी ने उसे सहसा ताल में फेंक दिया। फिर सब त्रिशूल के संग ताल में डूब गया।

ताल के किनारे आकर बबुनी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की–'हे शंकर भगवान् ! अब मुझे विजय दो। तुम्हारे त्रिशूल के सहारे आज मैंने सबको इसी ताल में गाड़ दिया। यह फिर कभी इस पानी से बाहर न आए, कभी यह लाश बाहर न आए, यही वर दो मुझे !'

नाले के उस पार क्रौंच का जोड़ा सहसा तेज स्वर में बोल उठा।

बड़ी बबुनी ने भीगे ऑचल को अपने माथे पर लगाकर कहा, धन्य हो भगवान्। अब वरदान मुझे मिल गया। राक्षस पराजित हुआ। देवता की आखिर जीत हुई। मैं तुम्हारे इस वरदान को कभी न भूलूॅगी। मैं शपथ खाती हूॅ भगवान्, कि राक्षस जब मेरे पैरों पर गिरने आवेगा, मैं सब कुछ तुम्हें ही सौंपूगी। उसे भी अंत में तुम्हारी ही शरण भेजूॅगी।'

फूल बाबू जिस दिन देईपारा अपने गॉव पहुॅचा, उससे दो दिन पहले गंगाबेली उस घर से कहीं गायब हो गई थी।

पूरे घर में गमी छायी हुई थी।

फूल को देखते ही ठकुरी मॉ दहाड़ मारकर रो उठी। फूल के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई।

ठकुरी मॉ के ऑचल में गंगाबेली का ठकुरी मॉ के नाम लिखा हुआ वह खत बॅधा था। उसे खोलकर मॉ ने फूल के सामने रख दिया और खुद वहॉ से यह कहती हुई हट गई कि ले, घर आयी हुई लक्ष्मी को ठुकराकर अब राज कर !

फूल बाबू के हाथों में पत्र खुला था–

पूज्य मॉ ! आपने अपने पाक घर में बहू का मुझे इतना बड़ा दरजा दिया, आपके इस एहसान को मैं अपने सर–ऑखों पर लिये जा रही हूॅ। आपने कभी इतबार नहीं किया, मैं सचमुच आपके घर के लायक न थी। मैं सच तवायफ लड़की थी। मैं लिख रही हूॅ सच, इतबार कीजिए मॉ ! और मुझे भूल जाइए। चाहे मुझे माफ मत कीजिए मॉ ! आपके दिल और दिमाग में हिन्दुओ की गंगा बहती है, मैंने देखा है उसे आपकी ऑखों से और मैंने उसमें अपने –आपको पवित्र करने की कोशिश की है। पर मेरा वह हक न था। मेरा कुछ भी हक न था। जो कुछ, जितना भी आपके पुत्र ने मुझे दिया मैं उसकी हकदार न थी। अपने बड़प्पन और फैयाजी से उन्होंने मुझे उसका हकदार समझकर दिया। पर कागज का फूल क्या खुशबू दे, क्या फल दे ! आप कहेंगी कि मैं इस तरह चोरों की नाई छिपकर उस पाक घर से क्यों गायब हुई ? मुझे शर्म है इसकी ! पर मैं क्या करती ! मैं वह बहू न रह गई थी, आपके बेकसूर साहबजादे ने मुझमें मेरी तवायफ को जगा दिया। पतुरिया–पत उतारने वाली होकर मैं तब आपके उस चरणों को कैसे छूती और कैसे शराब की बदबू–भरे मुंह से आपसे इजाजत मॉगती कि मैं अब आपके घर से जा रही हूॅ। जिसको आपने एक दिन बहू के मजहब में इतना ऊॅचा उठाकर इतनी इज्जत दी, जिसे आपने मॉ–जैसी मुहब्बत दी, इतबार दिया, उसके सामने मैं टूटी हुई फिर कैसे आतीी ? जिन्होंने मुझे तवायफ से सुहागिन बनाया, 'बड़ी चम्पा, ' से जिन्होंने मुझे 'गंगाबेली' नाम दिया, वह अगर फिर चाहें कि मैं वही बड़ी चम्पा हो जाऊॅ, सो भी उस घर में जहॉ मॉ ने मुझे बॉहें फैलाकर दुआऍ दीं, यह मेरे लिए नामुमकिन था। इतबार कीजिएगा मॉ, मैं वह बड़ी चम्पा फिर कैसे हो सकती थी ? बीच में जो गंगाबेली आ गई ! इसलिए मैं अब बड़ी चम्पा की लाश पर, गंगाबेली की चिता पर बेहद बदशकल, निहायत ही खौफनाक औरत होकर जा रही हूॅ। इसलिए मुझे आप जरूर भूल जाइएगा। आपने, आपके घर ने; आपके पुत्र ने मुझे बहुत दिया, बहुत कि जिसकी मैं हकदार न थी। सिर्फ इतना और दीजिएगा कि मुझे भूल जाइएगा। यह समझिएगा कि भरे दूध के गिलास पर एक मक्खीी कहीं से उड़कर आ गई थी, मालिक ने उसे उड़ा दिया और मक्खी अपनी जगह उड़ गई। बस, विदा ! फिर कभी न मिलने की विदा !

मॉ आपकी गंगाबेली मैं, बड़ी चम्पा। नहीं–नहीं गंगाबेली।

खत पढ़ते–पढ़ते फूल बाबू की ऑखें के सामने अंधेरा छा गया। उसे लगा, बखिरा ताल में असंख्य पक्षी चरते–गाते एक साथ सहसा ताल छोड़कर आसमान में उड़ गए हों और आसमान से सब ऐसे देश में उड़ चले हों, जिसका कहीं कोई पता नहीं। सूने अंधकार में केवल उनके बोल, उनके उड़ने की ध्वनि और उनके गाने की प्रतिध्वनि गूॅज रही हो और गूॅजती चली जा रही हो।

फूल बाबू अपनी जगह से प्रयास करके उठा। सीधे गंगाबेली के कमरे में गया। शायद उसके लिए भी गंगाबेली ने कोई खत छोड़ा हो।

पर क्यों ? किस लिए ?

फूल बाबू उस सूने कमरे में खड़ा रो पड़ा और दीवार में मुॅह छिपाकर फफकने लगा, 'गंगाबेली !'

'गंगाबेली !'

पर दीवारों से उसे कोई जवाब न मिला, बल्कि कमरे की वे चारों दीवारें जैसे धीरे–धीरे उसके सपीम आने लगीं। उसका अपने–आप में दम घुटने लगा। उसने देखा कमरे के बीचों–बीच शराब की चार बोंतलें खाली बड़ी हैं, और उन चारों के बीच एक भरी बोतल रखी है। उसके ऊपर गिलास रखा हुआ है। और उन खाली बोतलों से एक नरम आवाज उठ रही है.....लो.....कबूल करो। मैंने चार बोतलें खाली की हैं, तुम पहले एक खाली करो ! मैं अभी और पेश करती हूॅ। लोग कहते हैं रात बीत चुकी।

मुझको समझाओ, मैं शराबी हूँ।अजीब नशीली अदा से यह कहती हुई मानो गंगाबेली उस सूने कमरे में सहसा कौंध गई हो, और पास घिरती हुई वे दीवारें हॅसकर पीछे हट गई हों।

फूल ने तकिये के गिलाफ में उन पॉचों बोतलों को भरा और सीधे ले जाकर उसे ताल में फेंक दिया। बोतलें आपस में टकराईं और पानी में डूब गईं और डूबकर धरती की सतह में जाकर शायद फिर किसी लोहे से टकराईं।

त्रिशूल में !
मूर्ति में !
नहीं। सितार के तारों में।
सा.....ग.....म.....ध.....नी.....सा।
ताल की लहरें कॉपती हुई किनारे से टकराई और किनारे से फूट–फूटकर 'मध्यम और 'निषाद' में रो पड़ीं।
मालकौंस में मध्यम और निषाद !
कितने कोमल ! कितने पावन !
फूल बाबू बिलकुल दौड़ता हुआ आज पहली बार बबुनी के गॉव में पहुंचा।

बबुनी शिवाले के बाहर खड़ी थी। सामने पहुॅचकर फूल ने हाथ जोड़कर पूछा, 'बता गंगाबेली कहॉ है ?'
'मुझे क्या पता ? जाकर ढूॅढ़ो न !'
'मुझे पता होता तो तुम्हारे पास क्यों आता, बबुनी !'
'तो मैं क्या करूॅ ? मुझे क्या लेना–देना ?'
'तुझसे उसकी भेंट हुई है ?'
'हॉ, उसी ताल पर भेंट हुई थी। पर मैं नहीं जानती फिर वह कहॉ गई।'
'बता, क्या करूॅ मैं ? कहॉ किस रास्ते से मैं ढूंढूॅ उसे ?'
बबुनी बड़े गर्व से बोली, 'जाकर मेरे शंकर भगवान के सामने अपना माथा झुकाओ और उन्हीं से पूछो। वही तुम्हों रास्ता देंगे।'
'सच ?'
फूल बाबू विचलित था। दौड़कर शिवाले में शंकर के सामने वह झुक गया, 'भगवान् ! मुझे मेरी गंगाबेली दो। वह कहॉ गई, मुझे उसका रास्ता बताओ !'
पर उसे रास्ता कौन बताता ! पत्थर का शिवलिंग निर्विकार रह गया। बबुनी खड़ी विजय से मुस्कराती रह गई।
फूल बाबू को स्मरण आया–मगहर की उसी समाधि पर जहॉ उसकी गंगाबेली से अनुपम शादी हुई थी, गंगाबेली ने समाधि के सामने झुककर प्रणाम करने के लिए कहा था। वह नहीं झुका था। न उसने कोई प्रणाम ही किया था। और आज उसे यहॉ बबुनी के सामने उसके निष्प्राण भगवान् के सामने अकारथ ही झुकना पड़ा।
'चलो, मुझे यह दंड भोगना ही था। गंगाबेली तुम कहॉ हो ?' इस आर्त्त स्वर को ओंठों पर लिये हुए फूल तीर की भॉति उस गॉव से बाहर निकल भागा।
आमी नदी। बालू सासन, और खलीलाबाद वाली सड़क।

खलीलाबाद पहुॅचकर वहॉ पता लगाया। कोई पता नहीं। फिर गोरखपुर। वही राप्ती नही। वही उजड़ा हुआ सूना स्थान–बसंतपुर की वह सराय। वहॉ पगला कल्लू अब भी बैठा है, चुपचाप। बिग्गी अब वहॉ नहीं है। सामने की पुलिस–चौकी भी नहीं है।
सराय का आधा हिस्सा तोड़ा जा चुका है। वहॉ खड़े हुए ओवरसियर ने बताया–यह पूरी बिल्डिंग तोड़कर यहॉ 'फैमिली प्लानिंग' की 'क्लिनिक' बनेगी।

फूल ने सराय के ऑगन में खड़े होकर देखा, आमने–सामने के वे दोनों कोठे आधे–आधे तोड़े जा चुके हैं। कटी हुई, रक्त–जैसी ईटें और उनके बीच के घायल दराज मुँह खोले हुए फूल की ओर ऐसे तक रहे थे, जैसे उससे वे कुछ पूछ रहे हों।

मैं यहॉ क्यों आया ? फूल ने अपने–आप से पूछा और उत्तर में उसकी आंखें भर आई।

उल्टे पॉव लौटकर वह पूरे गोरखपुर में छानने लगा–उर्दू बाजार, हूमायूँपुर, अलीनगर, बक्सीपुर, काजीपुर, मियॉ बाजार, जाफरा बाजार, नयाामत चक, साहबगंज, तुर्कमानपुर। इधर राप्ती का किनारा, उधर मुहद्दीपुर तक। उत्तर में लोको, रेलवे कॉलोनी, गोरखनाथ और दक्षिण में इलाहीबाग। पर कहीं कुछ पता नहीं।

अगले दिन संध्या–समय फूल गोरखपुर बस्ती वाली ट्रेन पर जा बैठा। गाड़ी खुलने में कुछ देर थी। कटिहार वाली गाड़ी आई। उधर उस्का वाली गाड़ी के भी मुसाफिर प्लेटफार्म पर जमा थे।

फूल ने सहसा देखा–एक औरत ने फर्स्ट क्लास के डिब्बे के सामने मुसाफिर की जेब काट ली।

फूल ने नीचे उतरकर गौर किया–उस स्त्री को उसने बसंतपुर की सराय में देखा है। हॉ, हॉ, वह स्त्री नहीं, वह वही रंडी है बसंतपुर की।

फूल बाबू डरा–डरा–सा उसके पास गया, बोला, 'माफ करना इधर तुमने बड़ी चम्पा को तो नहीं देखा ?'

'कौन बड़ी चम्पा ? मुझे क्या मालूम जी !' औरत अलग हट गई। उसके साथ ही दूसरी औरत ने कहा, 'बड़ी चम्पा, वह बड़ी चम्पा, अरे उसे तो तभी कोई अपनी औरत बनाकर ले गया।' पहली औरत घूमकर हॅस पड़ी, 'तोबा करो जी, अरे औरत कौन बनाता है ! रखैल कहो रखैल।'

'वही, वही !'

दोनों हॅस पड़ीं। फूल बाबू उन्हें देखता रह गया। वे क्षण–भर में ही प्लेटफार्म की भीड़ में लापता हो गई। फूल हाथ मलता हुआ गाड़ी में अपनी सीट पर जा बैठा।

गाड़ी नौ बजे रात को खलीलाबाद स्टेशन पर पहुँची। फूल प्लेटफार्म की एक बेंच पर लेट गया। उससे दिशाएँ नहीं पहचानी जा रही थीं।

तब तक उसके सामने थोड़ी दूर पर कस्बे के तीन लोग आपस में कुछ बात करते हुए बड़े बेहूदे ढंग से हॅसने लगे।

फूल ने एक के मुँह से यह कहते हुए सुना–यार माल अच्छा है, पर गजब की पीने वाली है ! परिन्दा कहॉ से उड़कर आ गया।

फूल बाबू उनके पास गया, विनय से बोला, 'क्या बात है, मुझे भी बताओ ?'

'गॉठ में दाम है ?' एक ने कहा।

'माल है माल, विलायती माल !' दूसरे ने कहा।

तीनों हॅसे, 'अजी, अपन को नाम से क्या मतलब ! परसों गये थे हम लोग। कल तो उसकी तबीयत कुछ खराब थी, आज का पता नहीं.....।'

'मुझे बताओ वह कहॉ रहती है ?' फूल ने उनके हाथ पकड़ लिए।

'दस रूपये बताने की फीस दो पहले !'

फूल ने झट दस रूपये दिये।

संग अपने फूल को तीनों बाजार में ले गए।

'एक पोतल लाल परी खरीदकर ले चलो।' एक ने कहा। और फूल से रूपये लेकर झट खरीद लाया।

ग्रेन मार्केट पार कर वे तीनों फूल के संग कपड़ही की ओर बढ़े। मेन सड़क से दायीं ओर बिजली के दफ्तर के पीछे सिंधी होटल। उसके पीछे खपरैल का एक कच्चा मकान, सिर्फ दो कमरों का–एक आगे एक पीछे। मकान के पीछे जाकर वे लोग खड़े हो गए और एक ने उचककर खुली खिड़की से भीतर झॉकने की कोशिश की।

सहसा कमरे से कै करने की तेज आवाज आई ओर उससे जुड़ी हुई एक लम्बी कराह।

फूल बेतहाशा दौड़कर बन्द किवाड़ से टकरा गया।

भीतर से किवाड़ खुली, और खोलने वाली थी छोटी चम्पा। गंगाबेली बेहोश–सी खाट पर पड़ी थी, और सारा कमरा लालटेन की रोशनी में भयानक लग रहा था।

'कौन ?' गंगाबेली ने कराह के बीच, किन्तु स्पष्ट स्वर में पूछा।

फूल ने छोटी चम्पा से कुछ न बताने का इशारा किया। पर छोटी चम्पा ने बता दिया, 'जिया, फूल बाबू तशरीफ ले आए हैं।'

फूल जड़वत् खड़ा देखता रहा। गंगाबेली की बेचैनी बढ़ गई। झट फूल ने कमरे से बाहर जाते हुए कहा, 'डाक्टर बुला लाऊँ।'

'एक डाक्टर अभी देखकर गये हैं। कल भी मैंने यहॉ आते ही सुबह एक दूसरे डाक्टर को दिखाया है।' यह कहती हुई छोटी चम्पा ने गंगाबेली को सम्हालकर दवा पिलाई। फिर कमरे को साफ करने लगी। सारा कमरा कै और खून के धब्बों से डूबा हुआ था।

'डाक्टर ने क्या कहा है ?' फूल ने गिड़गिड़ाकर छोटी चम्पा का हाथ पकड़ लिया।

'क्या बताऊँ ! देखो न !'

गंगाबेली का चेहरा पीला पड़ गया था। ऑखें दर्द में डूबी हुई थीं।

'डाक्टर ने क्या बताया है ? बोलो चम्पा !'

छोटी चम्पा ने धीरे से कमरे के बाहर फूल को ले जाकर कहा, 'शराब की ज्यादती से अंतड़ियॉ घायल हो गई हैं। डाक्टर जिया को यहॉ से गोरखपुर अस्पताल में ले जाने को कहते हैं। पर यह भी कहते हैं कि हिलने–डोलने से हार्ट फेल भी होने का डर है।'

'नहीं–नहीं, ऐसा नहीं होगा ! मैं अपनी गंगाबेली को नहीं खो सकता ! मुझे उसने दण्ड देने के लिए ऐसा किया है। उससे कहो, वह मुझे माफ कर दे, चम्पा !'

'पता नहीं क्या किया है उसने !'

छोटी चम्पा बेहद उदास थी। वह कल सुबह से गंगाबेली को इसी दशा में देख रही है, और तब से इसी तरह खड़ी हुई वह उसकी सेवा में लगी हैं पर आज दोपहर से उसकी ऑखें इसी तरह बन्द हैं।

'होश आाते ही शराब मॉगती है। और डाक्टर ने बताया है, अगर अब एक कतरा भी शराब का इनके मुँह में गया तो गजब हो जाएगा।'

नीचे जमीन पर फूल सिरहाने बैठकर गंगाबेली के जलते माथे को अपनी भीगी हथेलियोां से सहलाने लगा।

छोटी चम्पा ने फूल को कुछ न बोलने को इशारा किया। वह चुप बैठा रहा।

गंगाबेली ने क्षीण स्वर में कहा, कौन ?'

'मैं हूं फूल।'

कुछ क्षणों बाद गंगाबेली ने कराहर कहा, 'ओह फूल बाबू !'

यह गंगाबेली इस तरह बोली जैसे कोई शिशु नींद की बेहोशी में कोई ख्वाब देखता हुआ बोले।

और गंगाबेली आगे कुछ न बोली, जैसे ख्वाब को रौंदकर सो गई।

रात के दो बज गए। गंगाबेली को बुखार एक सौ एक था। पेट का दर्द कुछ थम गया था। कै दस बसे से अब तक दो ही बार हुई है। डाक्टर ने मुँह में सिर्फ बर्फ का टुकड़ा देने के लिए कहा हैं। सो गंगाबेली के मुँह में जैसे ही बर्फ का टुकड़ा डाला जाता है, वह उसे मूली की तरह चबाकर कहती है–शराब.....शराब.....दो मुझे, इसलिए बगल में बैठी हुई छोटी चम्पा क्षण–क्षण पर उसके होंठों में चम्मच से बर्फ का पानी डाल देती है।

छोटी चम्पा ने फिर दवा दी।

गंगाबेली ने छोटी चम्पा की ओर करवट लेकर उसकी दायीं हथेली पर अपना मुँह रख लिया।

'फूल बाबू ! गंगाबेली क्या है ? सुनो फूल बाबू !'

'हॉ।'

छोटी चम्पा ने गंगाबेली के तप्त मुख पर अपना बायॉ हाथ रख दिया।

'बोलो नहीं, सो जाओ। सुबह बात करना जिया।'

'सुबह ! और अगर सुबह न हो तो ?'

'क्यों न होगी ? जरूर होगी। इतमीनान रखो !'

'वही तो नहीं है।.....मुझे बात कर लेने दो बहिना ! अब रोको नहीं।'

छोटी चम्पा चुप रह गई।

गंगाबेली के प्रश्न–भरे होंठ कॉप रहे थे, 'फूल बाबू' पति क्या है ? सुहाग किसे गहते हैं ? भला विवाह किससे होता है ? तुम क्या चाहते थे ? शरीर ?.....वह तो तुम्हें सराय में मिला ही था। जब शरीर दिया, तब तुमने दिल मॉगा। और दिल दिया तब तुमने मुझे बदशकल कहा।

यह सब क्या था फूल बाबू ? सच, मैं जानना चाहती हूँ। मैं अपनी इस नासमझी की तकलीफ नहीं बरदाश्त कर पा रही हूँ। रंडी.....फिर सुहागिन.....और बहू.....पत्नी.....प्रेमिका.....ये सब एक–दूसरे से अलग–अलग हैं न ! क्यों रे गंगाबेली.....रंडी किसी की सुहागिन नहीं हो सकती न ? और सुहागिन प्रेमिका नहीं हो सकती, क्यों ? बोलो न ? तुम तो मुझे इतनी आसानी से पा गए थे, मुझे बॉध लिया था, मुझे जीत लिया था। तुम्हें पाने का क्या रास्ता है भला ? बताओ न ! दिल नहीं, मुहब्बत नहीं, मजहब नहीं, समर्पण नहीं और यह शरीर भी नहीं। फिर वह क्या है ? मुझे बताओ फूल बाबू ! जब मैंने अपने–आप में तुम्हारे लिए औरत का सही मजहब पैदा किया, तब तुमने मुझसे नफरत की, और जब मैंने अपने–आप को इस तरह कर लिया, तब तुममें मेरे लिए मुहब्बत जगी–ऐसा क्यों ? जिस दिन तुम मुझे पा गए, उसी दिन तुमने मुझे क्यों छोड़ दिया ? यह क्या है ? मुझे समझाओ न ! मैं जानना चाहती हूँ। मैं सिर्फ जानना चाहती हूँ। मैं इनसे अब कोई सबक नहीं लूँगी। महज जवाब ढूँढती हूँ। इन सवालों के पिंजरे में एक सवाल बैठा है कि तुम्हारा सवाल क्या है ? और जवाब क्या है ? मैं जान भी जाऊँगी तो इतबार रखो, मैं उससे कोई फायदा नहीं उठाऊँगी।'

फूल बाबू से बिना कोई उत्तर पाए, गंगाबेली सवाल–पर–सवाल करती जा रही थी, और उसकी ऑखें से ऑसुओं की धार बह–बहकर छोटी चम्पा की हथेलियों को तर करती चल रही थी।

बीच–बीच में सिर्फ चम्मच–भर बर्फ का पानी।

फिर वही दर्द।.....छोटी चम्पा ने गंगाबेली को सम्हालकर दूसरी करवट कर दिया, और फिर उसी तरह बैठ गई।

गंगाबेली को सूखी कै हुई–एक बार, दो बार।

दर्द से ऑख गाड़े और पेट को हाथ से बॉधे हुए गंगाबेली के होंठों से फिर भी एक सवाल कॉपा..... .ये सारी जिन्दा औरतें रंडी हैं क्या ? नहीं है तो जिन्दा कैसे हैं ? खुश कैसे हैं ? और रंडी, वेश्या औरत नहीं हैं क्यों ? छोड़ो इन सवालों को ! बताओं फूल बाबू, मैं अपने को देकर भी तुम्हें क्यों न पा सकी ? तुम्हारे मजहब में मैं अपने को डालकर तुम्हारे मज़हब को न पा सकी। बताओ मैं तुम पर अब भी विश्वास करना चाहती हूं फूल ! बोलो ! यह कहते–कहते गंगाबेली धीरे–धीरे बेहोश हो गई। फूल बाबू पागलों जैसा उसका पीला माथा थामे बैठा था। छोटी चम्पा कभी गंगाबेली के मुँह में दवा डालती, कभी बर्फ का पानी। पर अब कुछ भी उसके मुँह में न जाता सब होंठों के बाहर ही रह जाता, जैसे होंठों पर असंख्या सवालों की सेना खड़ी हो। और तन का सेनापति वह प्राण दर्द के उस चक्रव्यूह में रह गया।

मेरा–तेरा मनवॉ कैसे एक होई।

गंगाबेली के ठंडे, चिर शान्त होंठों पर, मुख पर, बंद ऑखों पर यह सवाल जमा ही रह गया। और उसके माथे से वह गंगाबेली नाम न उतार सका, जिसका वह अंत तक अर्थ जानना चाह रही थी।

गंगाबेली–क्या है रे बहिना ?

गंगाबेली–क्या है फूल बाबू ?

गंगाबेली ! फूल ने अपने में दुहराया।

गंगाबेली तू, अपने नये जन्म में जल का पक्षी होकर किस ताल में उड़ेगी ?

क्या पता !

सिर्फ एक बार, कम–से–कम एक बार तुम बखिरा ताल में अवश्य उड़कर आना गंगाबेली ! तुम्हारा नाम इसी दूसरे ही जन्म के लिए मगहर की उस समाधि पर अपने–आप रख उठा था। तूने ही अपने–आपको जन्म दिया, तूने ही अपना नाम रखा। और अब तक तूने दूसरा भी जन्म ले लिया होगा। पर मैं वहीं–का–वहीं हूँ। यही मैं हूँ और वह तुम थीं, प्राणवान्, प्रेमवान्, विकासवान !

सुना ! मैं तुम्हारी चिता की राख को कबीर की उसी समाधि पर रख आया हूँ, जिसका वह पद तुम अक्सर गाया करती थीं–

पिया मेरा जागे मैं कैसे सोई री ?

पॉच सखी मेरे संग की सहेली।

उस रंग–रंगी पिया रंग न मिली री !

गंगाबेली ! तूने जिन्दगी–भर विश्वास किया था। और अपने उस दर्दनाक अंत समय भी तुम मुझ पर विश्वास करना चाह रही थीं। तुम विश्वास करने आई और सवालों के पिंजरे में तड़पकर चली गई।

मैं अब उसी देईपारा में हूँ। और मुझे अब यही रहना होगा। जिस पिंजरे में मैंने तुझ बेकसूर को नाहक बंद करके मारा, मैं अब खुद उसी में बंद रहूँगा। पश्चाताप के लिए नहीं प्रायश्चित के लिए नहीं, उसका तो दरजा ही और है। सिर्फ याद के लिए, विश्वास को जन्म देने के लिए।

तुम्हारी छोटी चम्पा न जाने कहॉ चली गई। मैं क्यों, कैसे पूछता तू कहॉ जा रही है ? मैं अपने सवाल का साया उस पर क्यों डालता ?

वह चली गई।

और बड़ी बबुनी–मेरी पहली स्त्री अब मेरे घर में आ गई है। मेरे पिंजरे की कुँजी अब इसी बबुनी के हाथ में है। बबुनी और छोटी चम्पा दोनों एक–सी हैं। दोनों किसी को नहीं समर्पित हैं। तभी दोनों जीवित हैं। बबुनी पत्थर के भगवान् को मानती है। छोटी चम्पा सिर्फ अपने को। दोनों का अहंकार एक–सा ही है।

बबुनी किस दिन से मेरे घर आयी है, उसने बड़े गर्व से मेरे सामने कहा है–देख लिया न, मेरे शंकर भगवान् को ! अभी क्या, और देखना मेरी ताकत।

नहीं, नहीं बबुनी, मैं अब और तेरी ताकत नहीं देखना चाहता। मैं तो पिंजरे में बंद हूँ अब !

मेरी जिन्दगी शायद यही थी। यही है। वह पहले की जिन्दगी तो सुबह का कोई पवित्र स्वप्न था, जिसे मैं नहीं समझ सका, जिसे मैं नहीं देख सकता। उसके विश्वास के लिए मुझे कई जन्म लेने होंगे।

असाढ़ की वर्षा हो चुकी है।

इस साल देईपारा में खूब आम आये हैं। गॉव के ब्राहम्ण लोग चुप रहने वाले फूल बाबू से बार–बार कहते हैं कि गजब किया तूने। देईपारा में कोई ताल की चिड़ियॉ नहीं मारता। हर वर्ष सैकड़ों परदेशी पक्षी हिमालय से अरब सागर और बंगाल की खाड़ी से उड़–उड़कर यहॉ आते हैं और शांति से इधर विहार करते हैं पर तुमने इस गॉव का इतिहास पहली बार कलंकित किया। वह गंगाबेली इसी परदेशी पक्षी की तरह यहॉ उड़कर आयी थी, किन्तु तूने उसका शिकार कर डाला।

फूल बाबू इस कथन को सुन लेता है, और चुपचाप ताल के शून्य में देखता है सिर्फ एक सुन्दर पक्षी, सुनहरे परों वाला, सतरंगी पूँछ वाला, ताल के इस पार से उस पार तक जैसे सदा उड़ता रहता है। कुछ बोलता नहीं, कुछ गाता नहीं। कभी कहीं बैठकर विश्राम नहीं लेता।

असाढ़ की पूर्णिमा के दिन बखिरा ताल में मेला लगता है–उसके चारों किनारे बखिरा कस्बे की ओर, देईपारा की ओर, माहनपारा की ओर तथा पूरब में लोहरौती की ओर।

मेला दो दिन का होता है। पहले दिन लोग पक्की मिट्टी के बड़े–बड़े गणेश और हनुमानजी की मूर्ति ताल में छोड़ते हैं। ताल में मूर्ति छोड़ने वाला पुरूष अपनी पत्नी या दिवंगता पत्नी का कोई गहना, वस्त्र या कोई चिन्ह उसमें बॉधकर ताल में छोड़ता है। इसी तरह स्त्री अपने पति, या दिवंगत पति का कोई चिन्ह मूर्ति में बॉधकर छोड़ती है, और संध्या–समय अपने–अपने घर जाते समय हर पति–पत्नी परस्पर कोई–न–कोई किस्सा–कथा कहते हैं।

देईपारा की ओर बबुनी अपने पति फूल बाबू को संग लिए हुए ताल के मेले में गयी। गणेश की मूर्ति में उसने फूल बाबू का रूमाल बॉधकर ताल के पानी में डाल दिया।

ताल में नहाकर जब वह बाहर किनारे पर आयी, फूल वहॉ न था। झटपट कपड़े बदले बबुनी उसे ढूँढने लगी। मेले के अंत में उसने देखा, फूल किसी कागज में अपनी अँगूठी बॉधकर उसे ताल में डालने जा रहा है।

बबुनी प्रसन्न हुई देखकर कि चलो उसमें धर्म जग रहा है। पर दूसरे ही क्षण वह दौड़ी–वह कैसा कागज है ? किसका प्रेम–पत्र है ?

फूल बाबू ने दिखाया–'गंगाबेली का खत ठकुरी मॉ के नाम !'

'अधर्मी कहीं के !' बबुनी ने बिगड़कर कहा, 'ताल में गणेश, हनुमानजी की मूर्ति चढ़ानी चाहिए कि यह गंदा कागज ?'

'यही मेरी मूर्ति है।' फूल ने कहा।

'तो तुम इसका फल भी भोगोगे ! चढ़ाओ न ! मुझसे क्या ?'

'बबुनी, तुझे तो खुश होना चाहिए; मैं उसकी कोई भी निशानी, यहॉ तक कि यह आखिरी खत भी अपने यहॉ नहीं रहने देना चाहता !'

बबुनी ने गंभीरता से कहा, 'किन्तु इसका आज के दिन इस ताल में डालने से क्या मतलब होता है ?'

'पता नहीं।'

फूल ने तब तक उसे ऑगूठी में डालकर ताल के बहुत गहरे में विसर्जित कर दिया।

ताल के किनारे बबुनी ने कहा, 'मैं सब समझती हूँ तुम्हारी हरकत ! तुम उस गंगाबेली को अपनी स्त्री मानते हो। यह वही था।'

'पता नहीं।'

'हॉ–हॉ ! मुझे पता है न ! मैं जानती हूँ तुझे ! खूब जानती हूँ। अच्छा अब सीधे से घर चलों और जो कथा मैं तुमसे कहने जा रही हूँ, उसे ध्यान से सुनो।'

ताल के कंठ से गॉव की ओर मुड़कर बबुनी ने कहना शुरू किया– एक लकड़हारा अपनी पत्नी के संग जंगल में लकड़ी काट रहा था। पति–पत्नी में बड़ा प्रेम था। दोनों एक क्षण भी एक–दूसरे से अलग नहीं होते थे। तो दिन–भर लकड़ी काटकर लकड़हारा जब पत्नी के संग अपने घर के लिए रवाना हुआ तो रास्तें में लकड़हारे को सॉप ने डस लिया और लकड़हारा मर गया। लकड़हारिन धाड़ मारकर रोने लगी। वह सतवंती थी, बिना पति के उसका जीवित रहा असंभव था। उधर से शंकर–पार्वती जा रहे थे। लकड़हारिन दौड़कर शंकर भगवान् के पॉव पड़ गई–'हे भगवान्, मेरे पति को सॉप ने डस लिया है, उसे जीवित कर दो।'

शंकर ने कहा, 'यह मेरे मान का नहीं। मैं तुम्हारे पति को नहीं जिवा सकता।' यह कहकर शंकर भगवान् चले गए और कुटी में ध्यानमग्न हो गए।

लकड़हारिन तब पार्वतीजी के पॉव जा गिरी, महारानी, मेरे पति को जिन्दा करो, नहीं तो मैं उसके संग सती हो जाऊँगी।' पार्वती जी को दया आई। वह लकड़हारिन के संग उसके मरे हुए पति के पास गई। लकड़हारे के मुंह से खून निकलकर वहॉ की जमीन रंग उठी थी। पार्वती जी ने खून से रंगी हुई जमीन से मिट्टी उठाकर लकड़हारिन की मॉग में लगा दी और कहा, तुम्हारा पति अब जीवित हो जाएगा। पार्वती जी ने जाकर शंकर भगवान् से कहा कि लकड़हारे को जिन्दा होने के लिए बचन दे आई हूँ। शंकर भगवान् ने कहा–यह तो गजब हो गया, मैंने तो उसे जिन्दा करने से मना कर दिया था। फिर शंकर भगवान् और पार्वती जी में बड़ा वाद–विवाद हुआ। पार्वती जी अन्त में जीतीं और शंकर भगवान् हार गए। उधर लकड़हारा जिन्दा हो गया और लकड़हारिन का सत अमर हो गया।

घर पहुँचकर फूल बाबू ने बबुनी से कहा, 'अब मेरी कथा सुनोगी ?'

'धर्म की कथा क्यों न सुनूंगी ?'

'पता नहीं कथा धर्म की है या अधर्म की ! पर वह जीवन की कथा जरूर है। एक चिड़ा था और एक चिड़िया। दोनों में बिल्कुल प्रेम न था। पर दोनों को रहना था एक ही घोंसले में। एक दिन चिड़िया चिड़ा को चोचों से मारती हुई बोली–जा भाग मेरे घोंसले से। तू मेरा पति नहीं। मेरा पति यह पूरा जंगल है। तू क्या समझता है अपने–आपको। चिड़ा चला गया और बिना घोंसले के डार–पात के बीच रहने लगा, और जंगल का फल–फूल चुगने लगा। इसी तरह दुःखी उसे एक दिन एक चिड़िया मिली। दोनों में प्रेम हुआ और झटपट आम की डाल पर एक उनका घोंसला बन गया।

चिड़िया ने दो अंडे दिए–प्यारे–प्यारे बहुत खूबसूरत। एक दिन रात को जंगल से ऑधी उठी, और दोनों अंडों की रक्षा में चिड़िया ऑधी की लपेट में आकर मर गई।

चिड़ा गम में सुबह घोंसले के पास एक डाल पर उदास चुप बैठा था। उस चिड़ा की पहली चिड़िया को सब पता रहता था। वह उसी वक्त सुबह उड़ती हुई आयी और बिना चिड़ा से कुछ पूछे–जॉचे उसके घोंसले में जा बैठी। दोनों अंडों को पैर से नीचे गिरा दिया ओर चिड़ा से बोली–देखो मैं कितनी सतवंती हूं चिड़ा ! जंगल भगवान् ने मुझे तुमसे फिर मिला दिया। चिड़ा चुप देखता रह गया।

'यह कथा तुमने बनाकर मुझ पर कही है !' बबुनी को गुस्सा आ गया।

फूल चुप था।

'यह कथा तूने मुझ पर कही है !' बबुनी ने फिर कहा।

'और वह कथा' , फूल ने कहा, 'वह कथा तूने मुझ पर कही है !'

'नहीं, झूठ है, मैंने धर्म की कथा कही है।'

'तो ठीक है, मैंने जिन्दगी की कथा कही है।'

'मेरे धर्म से तुम्हारी जिन्दगी बड़ी है क्या ?'

फूल बाबू ने हार मान ली, 'अच्छी बात है। मेरी जिन्दगी से तुम्हारा धर्म बड़ा है।'

उसी असाढ़ पूर्णिमा का दूसरा दिन। दूसरे दिन का मेला, पहले दिन के मेले का 'फलमेला' कहलाता है। दूसरे दिन मेले के यात्री और गॉव के लोग ताल में डूब–डूबकर मूर्ति की मिट्‌टी के बहाने कुछ निकालते हैं–पहली डुबकी में जिसे जो कुछ भी मिल जाए। जिसका जैसा भाग्य। किसी को मिट्‌टी, किसी को सीप, किसी को घोंघा, किसी को लोहा और किसी को धन–माया। ताल भगवान् जिसकी मुट्‌ठी में जो कुछ न दे दें।

और उस मेले का इतना महातम, उस ताल का ऐसा आशीष कि जिसे जो कुछ भी हाथ लगे, वह उसके घर के लिए रामबाण औषधि।

चाहे बुखार, चाहे पेट का दर्द, चाहे हैजा या ताऊन, उस मिट्‌टी या उस पदार्थ के सेवन, लेपन और योग से वह रोग अच्छा।

उस रोज ताल में से लोहे की प्राप्ति सबसे अधिक उत्तम और शुभ मानी जाती है। और शीशा पाना सबसे अधिक अशुद्ध !

पर लोहा इस ताल में विरले को ही, वह भी किसी–किसी वर्ष ही मिलता है। आज से आठ साल पूर्व बखिरा बाजार के एक गरीब बन्दवार को लोहे की एक तलवार मिली थी। उसकी सारी गरीबी तो कट ही गई, पर आज वह बरतन का बखिरा बाजार में सबसे बड़ा व्यापारी है। लोग लोहा पाने के लालच में हर साल उस ताल में लोहे की कितनी–कितनी चीजें बनवाकर फेंकते हैं, पर साला लोहा न जाने कहॉ डोल जाता है।

कहते हैं ताल के बीचों–बींच जहॉ चन्द्र फटी हुई है, जहॉ कोई पक्षी नहीं मॅडराता, वहॉ एक जलती हुई भट्‌ठी है, उसमें सारा लोहा खिंचकर गल जाता है।

दूसरे दिन के मेले में पहले दिन से ज्यादा भीड़ थी। बहुत दूर–दूर से लोग भाग्य आजमाने आये थे।

बबुनी फूल बाबू को जबरन संग लिये हुए सुबह–ही–सुबह मेले में ताल के किनारे गयी।

पति से साधिकार बोली, 'ताल में डुबकी मारकर मुट्‌ठी में निकाला।'

'क्या ?' फूल ने पूछा।

'जो कुछ मिले !'

'क्या होगा उससे ?'

'भाग्य की परीक्षा।'

'परीक्षा हो चुकी। अब कुछ भी इच्छा नहीं।'

बबुनी ने कहा, 'जिसने कल के मेले में ताल में कुछ डाला है, आज उसे ताल से कुछ जरूर ही निकालना पड़ेगा।'

'ऐसा ?'

यह कहकर फूल बाबू ताल में उतर गया। कुछ दूर जाकर उसने डुबकी लगाई, और मुट्‌ठी में उसे एक बोतल मिली।

हॅसता हुआ वह किनारे आया और बबुनी को दिखाकर बोला, 'यह है मेरी किस्मत ! यही तुम जानना चाह रही थीं न ! देख लिया, मेरे भाग्य में क्या है। सबसे बढ़कर अशुभ शीशा।'

बबुनी को बात लग गई। बोली, 'तुम्हारी किस्मत अकेली नहीं है, मैं भी हूं तुम्हारे साथ। मैं देखती हूँ।'

बबुनी बड़े विश्वास से ताल में पैठती चली गई। उसको मानो वह जगह मालूम है, जहॉ उनकी किस्मत का शुभ चिन्ह है।

फूल किनारे खड़ा उसे देख रहा था।

सहसा बबुनी ने ताल के गहरे में डुबकी ली और वही लौह त्रिशूल में बॅधा हुआ सितार और दुर्गा–मूर्ति सब पानी से ऊपर उसके हाथ में चमक उठा।

'शंकर भगवान् की जै !'

'बबुनी वहीं ताल में विजय–स्वर से चिल्ला उठी, शंकर भगवान की जै !'

सारे मेले में खलबली मच गई। बड़ी बबुनी जी को त्रिशूल मिला। दुर्गा की मूर्ति मिली। तारों वाला बाजा मिला।

शिव

भक्ति

और कला ! तीनों एक साथ।

सारा मेला ताल के किनारे बबुनी के चारों ओर घिर गया।

लोग बबुनी के पॉव छूने लगे। वह सबको बड़े गर्व से आशीष देने लगी।

उसी समय भीड़ को चीरता हुआ फूल बाबू बबुनी के सामने जा खड़ा हुआ, और सहसा उसके हाथ से वह सितार और दुर्गाजी की मूर्ति छीन ली–

चोर कहीं की !

यह गंगाबेली की है।

यह मेरी है !

यह मेरी है !

अंक में सितार और उसमें बॅधी मूर्ति को छिपाये हुए फूल घर की ओर भागा, जैसे स्वप्न में भिखारी धन की गठरी लिये भागता है।

घर पहुॅचकर फूल ने ठकुरी मॉ के सामने उसे दिखाते हुए कहा, यह देखो मॉ, मेरी गंगाबेली के धर्म को बबुनी ने अपने त्रिशूल में बॉधकर ताल में डुबाया था।'

'यही तुने चाहा था।' ठकुरी मॉ ने वैरागी स्वर में कहा।

फूल बाबू सितार को उसी तरह अंक में बॉधे खड़ा रहा।

बबुनी हाथ में त्रिशूल लिये आयी।

खुशी से बोली, 'देख ली न हमारी किस्मत ?'

'हमारी नहीं, बबुनी , अपनी कहो। मेरे पास किस्मत–जैसी कोई चीज नहीं है।'

'यह सितार और दुर्गाजी की मूर्ति ?' बबुनी ने पूछा।

'हॉ यह है मेरे पास, अगर तुम मुझसे यह छीन न लो।' फूल बाबू ने दीन स्वर में कहा।

'अच्छा ले जाओ इसे, गंगाबेली की निशानी ही सही। पर याद रखना इसे मैंने दिया है तुम्हें।'

'याद रखूॅगा।'

'मेरे पास यह त्रिशूल रहेगा।'

फूल बाबू जड़वत् चुप था।

गोइन्दा के सिवान में छोटी चम्पा प्रवेश करने लगी कि रास्ते में कुऍ पर पानी भरने वाली औरतों ने एक साथ हाथ उठाकर उसे मना किया–'अरे रे बहिन, कहॉ जात हइउ ! गोइन्दा में माई में कोप ! भगौती के किरपा।' इस कुऍ की जगत से पहले भी वह इसी तरह गोइन्दा की ओर जाने से टोकी गई थी।

पर इस बार छोटी चम्पा के पॉव कुऍ के पास ठमक गए।

कुऍ की औरतें उसके चारों ओर से घिर आई। कोई क्वारी, कोई युवती, कोई दुल्हन, कोई लरकोर, ये सब–की–सब बेतरह भय खायी हुई।

'न बहिनी ! बाहर पैर न रखो ! माई के कोप पड़ा है।'

दूसरी बोली, आंचल से झटाझट धरती छूकर माथे लगाती हुई, 'महन्त की कोठी मा जइबू रानी ! हाय–हाय ! न जा वहॉ रानी ! महन्त की कोठिन से तो आग लगिन है !'

तीसरी ऑचल से मुंह छिपाकर रो पड़ी, 'हाय रे दस दिन के भीतर मॉ पचीस जीव ! पचीस लहास। मइया अपने थाने पवाने जाव !'

चौथी ने डर से कॉपते हुए कहा, 'अडरत यह से ज्यादा खात लदल बाटीं !'

छोटी चम्पा ने उतनी देर में अनुभव किया कि गोइन्दा में लोग कितने भयभीत हैं। बातें करती हुई ये औरतें गोइन्दा की ओर इस तरह घबड़ाकर देख रही हैं, जैसे गोइन्दा में कब से आग लगी हो।

किन्तु चम्पा आगे बढ़ी।

उसे गोइन्दा जाना ही था।

मगहर से खलीलाबाद जाते समय उसे नैपाली बहू के विषय में खबर मिली है कि उन्हें महन्त सतीनाथ के हाथों गुरू गम्पनाथ ने हाथ–पॉव बॉधकर एक कमरे में बन्द करवा दिया है।

गोइन्दा में जो चेचक की महामारी फैली है, गुरू गम्पनाथ ने घोषित किया है कि इस प्रकोप की जड़ नैपाली बहू है। इससे और गहरे की जड़ वह वेश्या–छोटी चम्पा जान है। वह कहीं यदि मिल जाती तो उसे जीवित ही गोइन्दा की शापित भूमि में गाड़ दिया जाता।

छोटी चम्पा ने संकल्प किया, 'मैं जरूर जाऊॅगी गोइन्दा। देखूॅगी उन्हें, जो मुझे जिन्दा ही जमीन में गाड़ना चाहते हैं। जेसे मैं कोई खिलौना हूॅ। साज हूॅ जिया, बड़ी चम्पा की तरह, जिसे दुनिया ने इतनी बेरहमी से मसलकर तोड़–मरोड़ दिया। मैं इंसान हूॅ गोइन्दा वालों ! मैं हसीन लाजवाब हूॅ गोइन्दा के मर्द लोग.....जवानों !

'नैपाली बहू ने मुझे बेटी कहा है। इस जिन्दगी में यह पहला मुहब्बत–भरा अल्फाज ! यह पहला मजहबी रिश्ता ! नैपाली बहू मेरी मॉ ! मुझे बचाने के लिए जिसने अपनी पूजा छोड़ दी। अहिल्या की पूजा नहीं करूॅगी, पर मेरी बेटी को छोड़ दो ! इसका कोई कसूर नहीं। अहिल्या.....।'

छोटी चम्पा जलते हुए गोइन्दा की ओर भागी चली जा रही थी। लोग चिल्ला–चिल्लाकर उसे मना करते थे कि उधर मत जाओ। वहॉ भगवती का श्राप पड़ा है। वहॉ नाथ प्रभू का त्रिनेत्र खुला है। गोइन्दा में अहिल्या का पाप धधक उठा है। भस्म हो जाओगी !

'कौन करेगा मुझे भस्म ? अब कौन–सी आग मुझे भस्म कर सकती है ! मैं दोजख की आग से निकलकर आयी हूॅ। मैं खुद अपनी चिता हूॅ दुनिया वालों। मुझ पर रहम न करो.....मैं दर्द हूॅ.....दर्द की लपलपाती आग ! मेरे हुस्नो–इश्क में राजो–नियाज है। मेरे सागरों–मीना में काफिर की दर्दनाक हॅसी है। मेरी आग में अहिल्या का सुहाग है। मेरी रतनारी ऑखों में भगवती और नाथ के लिए सवाल है। मेरे सवाल को मत पूजो। इसे मत छुओ डरने वालों !'

दौड़ती हुई चम्पा गोइन्दा में पहुॅच गई।

और वह महन्त सतीनाथ की कोठी के सामने जा खड़ी हुई।

कोठी में से नौकर–चाकर कब के भाग गए थे।

'तू यहॉ मरने आयी है ?'

'हॉ, कहॉ है वह मौत ? लाओ उसे मेरे सामने !'

सतीनाथ ने कड़े स्वर में कहा, 'वह मौत पूरे गोइन्दा में घूम रही है।'

'मैंने नहीं देखा, मैं नहीं देख रही हूॅ।'

'तो !'

'मैं अपनी मॉ को देखने आयी हूॅ।'

'वह कमरे में बन्द है।'

'आखिर क्यों ? तुम्हारा गुरू गम्पनाथ का जहर इस गोइन्दा में इस तरह उगा ! मैं समझती थी उसका जहर मुझ पर खत्म हो गया।'

'यह मेरे गुरू का जहर नहीं, तेरा बोया हुआ जहर है ! तूने उस अहिल्या की पूजा करके गोइन्दा पर यह जुल्म ढाया है।'

'तो पूजा जुल्म है। क्यों ?'

'प्रेत और हैवान की पूजा जुल्म तो है ही।'

'मैं बताऊॅ प्रेत और हैवान कौन है.....तू है.....तेरा गुरू गम्पनाथ है !'

सतीनाथ ने गुस्से में जलकर छोटी चम्पा को मार कर जमीन पर गिरा दिया। वह फिर कुछ कहते–कहते उठने लगी कि सतीनाथ ने उसके हाथ पकड़कर पीठ पर बांध दिए।

मंदिर से हाथ में त्रिशूल लिए गुरू गम्पनाथ दौड़े, पीछे–पीछे लाठी लिए दो शिष्य !

'मारो...मारो !'

'जिन्दा इसे गाड़ दो !'

सहसा भीतर से नैपाली बहू प्रकट हुई, बॅधे हाथ, पैरों में जंजीर।

'खबरदार ! अभी तक तो तुम लोगों का अंधविश्वास था। अभी तक इस जहरीले अधर्मी गुरू गम्पनाथ की विषवाणी थी, किन्तु अगर अब तुम लोगों ने मेरी लौटी हुई बेटी पर हाथ लगाया तो अब तुम लोग मेरे विश्वास

को देखना। मैं जिस आग से ताजिन्दगी यहॉ जली हूँ, वह सब मेरे भीतर है, उसे भड़काया कि तुममें से एक नहीं रह सकता !'

नैपाली बहू की तेज ऑखें देखकर सब सहमें चुप खड़े रह गए।

नैपाली बहू कहती जा रही थी, 'चेचक की यह बीमारी यहॉ के लिए कोई नई बात नहीं है। हर तीसरे–चौथे साल इसकी पारी लगती ही रहती है। पर इसके पीछे यह डर, यह भय जरूर नया है। और इसका जन्मदाता तू है, तेरा धर्म है।'

'खींच लो इसकी जबान । अधर्मिनी कहीं की !'

सतीनाथ ने नैपाली का मुँह पकड़ लिया। शिष्यों ने पकड़कर खींचना शुरू किया।

गुरू ने आज्ञा दी, 'इन दोनों सर्पिनी को इसी तरह कमरे में बन्द कर दो। न अन्न, पानी।'

उसी दशा में नैपाली बहू और पीठ पर हाथ बॉधे चम्पा दोनों कमरे में बन्द कर दी गईं।

'पर नहीं, दोनों एक संग ? नहीं। उन्हें अलग–अलग कमरे में बन्द करो।'

दोनों अलग–अलग बन्द कर दी गईं आमने–सामने कमरों में। 'तू फिर यहॉ क्यों आई बेटी ?'

अपने कमरे में से छोटी चम्पा ने जवाब दिया, 'अपनी मॉ से मिलने !'

'तो मिल लिया न मॉ से ! देख लिया न मुझे। मैं इसी तरह सदा से थी। यह कोठी युगों से हम लोगों के लिए इसी तरह जेलखाना थी, जिसके दरवाजे पर अमानवीय धर्म के सींखचे लगे हैं। तू तो बेटी, जंगल का पक्षी है न ! तू फिर यहॉ क्यों उड़ आई ?'

'मॉ यह दुनिया जंगल नहीं, पिंजरा है। जहॉ जाती हूँ मुझे वहीं सींखचें बॉध लेते हैं। कहीं मुहब्बत के नाम पर, कहीं इन्सानियत के नाम पर और कहीं समाज के नाम पर, कहीं जजबात के नाम पर। मैं तब से उड़ती तो रही हूँ पर मैं कहॉ उड़कर जाऊँ, कहीं मुझे खुला आसमान नहीं दीख पड़ता।'

'अपनी जन्मभूमि नैपाल में मैने संस्कृत, अग्रेजी, इतिहास और साहित्य पढ़ा था। आज मैं पहली बार तुमसे बता रही हूँ, क्योंकि तूने मुझे मेरी खोयी हुई चेतना दी, कि तुम–जैसा धर्मग्रन्थ मैंने कभी नहीं देखा, हुआ था। मैं तुम और अहिल्या की मूर्ति।'

नैपाली बहू अपने कमरे में रो पड़ी।

'और यह सजा देखो, विश्वास की सजा। पाखंडी गुरू गम्पनाथ कहता है कि गोइन्दा की यह महामारी अहिल्या की मूर्ति के कारण हुई है। मेरे–तुम्हारे पूजन से अहिल्या की मूर्ति में प्राण–प्रतिष्ठा हुई है। वह अब प्राण–प्रतिष्ठित अहिल्या की मूर्ति अपने आत्मश्राप से गोइन्दा को मृत्यु के घाट उतार रही है। उसने यह भी घोषणा की है कि यह अहिल्या की श्रापित मूर्ति जहॉ है, जिस स्थान पर रहेगी, वहॉ अमंगल होगा, वहॉ की खेती नष्ट होगी, वहॉ महामारी फैलेगी। कोई तर्क नहीं करता इस पाखंडी से। कोई विवेक से नहीं देखता इस अधर्मिक को। बस सब–के–सब डर गए हैं पूरा जवार। यह पूरा क्षेत्र इससे केवल भय खा गया है।

गुरू गम्पनाथ आज कितने दिनों से निर्णय कर चुके हैं कि अहिल्या की वह मुर्ति वहॉ से खोद–उठाकर कहीं फिंकवा दी जाए।

पर अहिल्या की वह मूर्ति कौन खोदे ?

न जाने किस युग की, कब की वहॉ, वह पीठ के बल गड़ी हुई मूर्ति, उस पर फावड़ा–कुदाल लगाने की किसकी हिम्मत ? और जब से उस मूर्ति में प्राण–प्रतिष्ठा हुई है ? अहिल्या की ऑख उधर से आने–जाने वाले लोगों को जैसे बरबस बॉध लेती है। उसके होंठ जैसे अब खुल गए हैं।

रामपुर बाबू के ठाकुरद्वारे के कृष्ण भगवान की तरह वह अहिल्या की मूर्ति भी अब लोगों के लिए अपने रूप बदलती है, सुबह उसके मुख पर बालिका का स्वरूप, दिन निकलने के बाद कुमारी किशोरी का भाव और दोपहर को सोलहों कला से युवती। पर मॉग में सिंदूर नहीं। यही कलंक की बात है। यही अमंगल भाव है उस मूर्ति का। महामारी और अशुभ का कारण यही है। तीसरे पहर प्रौढ़ा और संध्या–समय वृद्धा स्वरूप। रात को देखा है उस मूर्ति को कभी ? अर्धरात्रि के समय वह मूर्ति अपने पूर्ण युवती स्वरूप और भाव में सोलहों श्रंगार करके मुस्कराती है। नाथ मंदिर के जो चारों शिष्य झटपट में दो ही दिन के भीतर मरे हैं, वे उसी अर्धरात्रि के समय मूर्मि की मुस्कराहट की अग्नि में जले हैं।

ऐसी निकासी ? राम–राम ! इस महाकोप की निकासी में तभी इतनी जलन फैलती है कि रोगी चार दिन भी नहीं सह पाता। तीसरे दिन ही ऑख–पांख उलट देता है वह।

उस दिन तीसरे पहर गुरू गम्पनाथ ने स्वयं हाथ में कुदाल लिए मूर्ति को खोदना शुरू किया। पूरे जवार में शोर मच गया। गॉव वालों ने अपने बच्चों को घरों में बन्द कर लिया। ढोर–डंगर को मैदान से हटा लिया। पुरूष लोगों ने अपने–अपने सिर ढक लिए।

गुरू गम्पनाथ के हाथ में कुदाल !

महन्त सतीनाथ के हाथ डबल बैरल की भरी हुई बन्दूक।

गॉव वालों का साहस जगा।

कुदाल, फावड़े, वैलचैक, लोहा–लाठी और दरखनी लिए हुए लोग अहिल्या की मूर्ति खोदने दौड़े।

लोग डर रहे थे कि मूर्ति के नीचे से न जाने क्या निकले। सॉप, भॅवरा, जीवन–जन्तु।

महन्त सतीनाथ बन्दूक ताने खड़ा।

कि सॉप निकला, फैटार.....फैटार।

बन्दूक का उसी क्षण फायर, समाप्त।

'चलो आगे बढ़ो और खोदो !'

'भगवान् कितनी मोटी पीठ है !'

'पत्थर जीवधारी है। युगों से यही पड़े–पड़े नीचे विकास कर गया।'

'सावधान, दूसरा सॉप, गोहुअन है गोहुअन !'

बन्दूक का फायर । गोहुअन भाग गया। भाग गया सर्प।

सात जन्म तक बदला लेगा। पर गोहुअन घायल थोड़े ही हुआ। पर बन्दूक से जैसे बच गया। बन्दूक में एक ही गोली थोड़े ही होती है। इतने छर्रों के बीच कैसे बच के निकल गया ?

'चुप रह चुप ! सेना है सेना !'

सर्प पर सर्प ! इतने सर्प इसके नीचे बैठे थे ! गुरू गम्पनाथ चिंतित हो गए। महन्त सतीनाथ में कुछ डर समा गया।

'महाराज कोई अनर्थ तो नहीं होगा ?' सतीनाथ ने पूछा।

'कुछ नहीं। बेफिकर रहो। बस इस भयानक मूर्ति को यहॉ से हटने दो।'

'जो आज्ञा !'

'सुनो, नैपाली बहू और उस वेष्या को बॉधकर रखा गया है न !'

'हॉ महाराज !'

'उन्हें अब मुक्त कर दो। अब हमें कोई डर नहीं। मूर्मि अब हिलने लगेगी थोड़ी देर में।'

कोठी में नैपाली बहू और छोटी चम्पा मुक्त कर दी गईं।

संध्या हो गई, मूर्ति के चारों ओर खोदते–खोदते।

जितने आदमी वहॉ अट सके, उतने लोग मूर्मि को एक साथ हिलाने लगे, पर मूर्ति अपनी जगह से जरा भी न हिली।

'मूर्ति जितनी खोदी जाती है, उतनी धॅस जाती है।'

'लोहा लगाओ, लोहा !'

'अरे नाथ स्वामी का तेज लगाओ तेज।'

'जै नाथ स्वामी की !'

'जै आदि शक्ति की ! इस कलंकित की छाया यहॉ से उठा दो।'

'जै गुरू की ! जै नाथ ! इस श्राप को दूर करो।'

पूरी रात गॉव के लोग मूर्ति को खोदने और हिलाने की कोषिष करते रहे, पर मूर्ति कुछ इस तरह सोई थी कि हिलने का नाम तक नहीं लेती थी।

सॉप, बिच्छू, कनखजूरे एक–पर–एक सारी रात अवष्य निकलते रहे।

'यह क्या गुरू महाराज ? इसके नीचे से इतने विषैले जीव–जन्तु।'

गुरू महाराज सबको समझाते हुए बोले, 'अभय हो !'

'ये विषैले जीव–जन्तु पाप हैं, जो कलंकी मूर्ति से निकल रहे हैं। यह इस मन्दिर में किसी को काट नहीं सकते। वरना मैं इनकी जबान न खींच लूं ! ये जीव–जन्तु सत्य नहीं, पाप माया हैं जो प्रकाष देखते ही लुप्त हो रहे हैं।'

दूसरे दिन और दूनी शक्ति लगाई गई। लकड़ी, बॉस और लोहे के सहारे मूर्ति नीचे से खोदी जा चुकी।

पर इसे यहॉ से हटाया कैसे जाए ?

बैलगाड़ी नहीं।

मोटर नहीं।

फिर कैसे ?

मजबूत ठोस छोटी–छोटी छः पहियों की नीची–सी एक गाड़ी बनायी गई।

और मूर्ति उस पर उलटाई जाने लगी।

कोठी से महन्त का हाथी लाया गया।

सबकी शक्ति लगाकर मूर्ति को जैसे ही गाड़ी पर रखा गया लोगों ने एक स्वर में जै–घोष किया।

'जै जै नाथ की जै !'

गुरू गम्पनाथ ने एक के ऊपर एक अलग स्वर में चिल्लाकर कहा, 'अलख ! अलग निरंजन !'

सहसा उसी हर्षोन्माद के बीच गुरू के षिष्य ने भयाकुल स्वर में कहा, 'धोखा ! गजब हो गया महाराज ! वेदी की अखंड–ज्योति बुझ गई !'

'कैसे बुझी ? असम्भव !'

'हॉ बुझ तो गई !'

'पिछले दो दिनों से इसी मूर्ति के खनने में दीया में घृत डालना रह गया।'

'तो ज्योति की अखंडता नष्ट हो गई।'

'गजब है इस मूर्ति की भयानक शक्ति ! चलते–चलते मन्दिर की ज्योति को खा लिया !'

गुरू गम्पनाथ ने दीपक को पुनः ज्योतित करके कहा, 'यह ज्योति अखंड है। इसे आदि–षक्ति ने जलाया है। इसे कोई खंडित नहीं कर सकता। यह ज्योति, यह प्रकाष आत्मा, ब्रह्मा, विष्णु और षिव के जन्म लेने के पूर्व भी विद्यमान था। सत्य की तीन स्थिति होती हैं–एक स्थूल, एक यथार्थ और सूक्ष्म। सो स्थूल ज्योति न सही, यथार्थ ज्योति तो सदैव है, क्योंकि वह अपने सूक्ष्म रूप में अखंड, शाष्वत है, जैसे गंगा का जन्म सूक्ष्म सत्य में ही हुआ था, सूक्ष्म रूप में ही वह आदि–षंकर की जटा में अवतरित हुईं। और तब स्थूल रूप में इस पृथ्वी पर आयीं। पृथ्वी पर तो आयीं, वह स्थूल यथार्थ है, पर अपने सूक्ष्म रूप में वह गंगा सदैव अखंड रूप में षिव की जटा में विद्यमान रहती है।'

मन्दिर के हाते में इकट्ठी भीड़ गुरू महाराज के उपदेष से सन्तुष्ट हो गई।

पर कुछ लोगों की जबान पर वह नग्न सत्य घूमता ही रहा, 'कलंकी मूर्ति की महिमा कम नहीं है। जो ज्योति कभी न बुझी, वह आज बुझ गई न ?'

'धन्य हो संहारिनी !'

'धन्य हो अभागिनी !'

'धन्य हो कुलटा देवी !'

'जाओ अपने थाने पवाने पाप श्रापा !'

हाथी मूर्ति को खींचता हुआ गॉव से बाहर निकला और उसके पीछे–पीछे छोटी चम्पा।

कलंकी के साथ कुलटा !

हाथी मूर्ति को सीधे पूर्व की दिषा की ओर खींचता हुआ चल रहा था। पीछे–पीछे अकेली चम्पा चल रही थी। जिस गॉव से हाथी मूर्ति को उस तरह खींचता हुआ गुजरता उस रास्ते के दूर से ही लोग उसे देखकर ऑखें मूँद लेते। घर भीतर से तत्काल बन्द हो जाते। बच्चे घर के बाहर नहीं आ सकते। ढोर–डंगर उस रास्ते से हटा दिए जाते।

गॉव के लोग दूर से ही चिल्लाकर कहते, 'पीलवान ! खबरदार ! कलंकी मूर्ति को जल्द खींच ले जाव !'

संध्या हो गई।

मूर्ति को उधर कहीं छोड़ना सम्भव नहीं रहा था। गॉव के लोग अपने सिवान के हद तक खड़े ललकारते रहते थे। हमारे गॉव के सिवान से बाहर ले जाव।'

इसी तरह दूसरे गॉव।

दूसरे सिवान। यहॉ तक कि सूने मैदान और बंजर धरती पर भी हाथी का रोकना असम्भव हो रहा था।

पीलवान ने सोचा–जब रात हो जाएगी, तब वह आसानी से उस मूर्ति को गाड़ी समेत कहीं भी मैदान में छोड़कर चला जाएगा।

पर लोग रात–रात–भर चिराग जलाए, जगह–जगह बड़े–बड़े अलाव जगाए, थाली बजाकर सावधान करते रहे–'इस मैदान में कलंकी मूर्ति को न छोड़ना।'

'हमारे सिवान से दूर।'

'हमारे गॉव में नहीं।'

यहॉ तक गॉव के लोग उस चलती गाड़ी को जरा–सी देर कहीं रूकने तक नहीं देते थे कि बेचारा हाथी और पैदल चलती हुई चम्पा थोड़ा विश्राम कर लें।

चलते–चलते सुबह हो गई।

आगे गॉव के लोग लाठियॉ ताने हुए अपने–अपने गॉव और सिवान का पहरा देते मिलने लगे।

हाथी रह–रहकर चीख पड़ता था।

छोटी चम्पा चुप पीछे–पीछे चल रही थी, निर्विकार संयत बनवासी की तरह।

ठीक दोपहर के समय धानी से मगहर वाली सड़क पर अपनी गाड़ी लिए हुए वही सुरेमन मिला–बड़े ऊॅचे स्वर में अलमस्त बिरहा गाता हुआ।

उसने हाथ उठाकर अपनी गाड़ी रोक दी।

चम्पा को उसने अपनी गाड़ी पर बिठा लिया और पीलवान से बोला, 'गाड़ी मेरे यहां ले चलो।'

आगे–आगे सुरेमन की बैलगाड़ी।

और पीछे–पीछे वह कलंकी मूर्ति मगहर वाली सड़क पर चल पड़ी।

असमाप्त कहानी

बड़ी चम्पा की कहानी समाप्त हो गई, पर छोटी चम्पा की कहानी तो खत्म ही नहीं होती। कहानी कहने वालों ने अपनी ओर से उसे पूर्ण कर देना चाहा, पर देखने, पढ़ने और सुनने वालों ने चारों ओर से आवाज उठाई कि छोटी चम्पा की कहानी अभी अपूर्ण है।

उसकी कथा कहॉ समाप्त हुई ?

वह छोटी चम्पा !

वह विद्रोही चम्पा !

अहिल्या की उस मूर्ति का क्या हुआ ? कहॉ गयी यह कलंकिनी ? और वह गाड़ी वाला सुरेमन ? क्या छोटी चम्पा ने उससे शादी कर दी ? क्या हुआ उस छोटी चम्पा का ?

दॉये–बॉयें जैसे जीवन की नदी बह रही हो और बीच में दीप की तरह वह छोटी चम्पा–अहिल्या की मूर्ति से बॅधी बादल–भरे आसमान की ओर खड़ी ताकती हुई।

पीलवान हाथी के कंधे पर बैठकर गोइन्दा वापस चला गया। अब बच गई केवल छोटी चम्पा और वह सुरेमन, उसके दोनों बैल वह अहिल्या की मूर्ति।

सामने कठिनइया नदी का फैला हुआ डेढ़ मील का गहरा कछार, जो पिछले दिनों की वर्षा से लबालब भर गया था। कछार के फैले हुए तट पर पीलवान ने अहिल्या की मूर्ति छोड़ दी थी। आगे जाने का सीधा रास्ता न था।

'तो यह मूरत क्या यहीं रहेगी ?' पीलवान से छोटी चम्पा ने यह सवाल किया था।

पीलवान ने जवाब दिया था, 'और कहॉ रहेगी ? इसे कहीं पड़ा रहना था, सो यह जगह मिल गई।'

'और मैं ?'

छोटी चम्पा ने यह सवाल अपने–आप से किया, 'यह मूरत तो मैं ही हूँ। मैं कहाँ जाऊँ इसे छोड़कर ?'

वह एकाएक बिना किसी भूमिका के सुरेमन से पूछ बैठी, 'तुम मुझे अपने घर रखोगे ?'

सुरेमन ने कहा, 'हाँ साहब, जरूर, क्यों नही ?'

'तो मुझे कैसे रखोगे अपने घर ?'

'हुजूर, जैसे बड़कवा के घर की बहू–बेटी रहती हैं। मैं तो आपके चरनों की धूल हूँ–जो बनेगा जीवन–भर आपकी सेवा करूँगा।'

छोटी चम्पा इज्जत के इस भाव से डर गई। कुछ क्षण बाद वह गंभीर होकर बोली, 'मुझसे शादी नहीं करोगे ?'

चम्पा का यह प्रष्न भोले–भाले सुरेमन पर अचानक गोली की तरह चला और वह तिलमिला उठा। सिर झुकाए वह धरती की ओर निहारने लगा।

छोटी चम्पा ने फिर दूसरी तरह से पूछा, 'तू शादी करेगा सुरेमन ? तू तो जन्म से ही अकेला है न ? बोल शादी करेगा न ? बोल न अरे तू इतना शर्माता क्यों है ? बोल शादी करेगा ?'

छोटी चम्पा ने सुरेमन का झुका हुआ मुंह ऊपर उठा दिया और वह सुरेमन की आँख देखकर काँप गई। सुरेमन रो रहा था।

साहेब, मेरी शादी हो गई है !'

'षादी हो गई है ! कब ? कहाँ है तेरी औरत ?

'मेरी औरत कहाँ है हुजूर, यह तो मैं भी नहीं जानता। हाँ, जब मैं चार साल का था, तभी मेरी शादी हो गई थी। बारह साल की उमर का था तभी मेरा गोना हुआ, फिर.....।'

सुरेमन की बोल के सामने आँसुओं की दीवार खिंच गई। उसे तोड़ते हुए कहने लगा कि तब मैं आपने गाँव महतोसाई में ही रहता था। गौने में मेरी औरत सिर्फ दो दिन के लिए आयी, फिर उसका काका उसे तीसरे दिन विदा करा ले गया। फिर.....।

'हाँ, फिर क्या हुआ ?'

'उसके काका के गाँव में कोई ब्राह्म्ण का लड़का था–कानुपर में नौकरी करता था। वह उसे भगा ले गया। कुछ दिन वह बेचारी कानपुर में रही। उसके काका ने वारंट कटाया। पुलिस उसे ढूँढ़ने गयी, पर वह लापता। और तीन साल बाद वह सुनायी पड़ा कि वह रायबरेली में पतुरिया हो गई।'

पतुरिया ! छोटी चम्पा आँख फाड़े देखती रह गई–पतुरिया !

'हाँ सरकार पतुरिया !'

वह सिर झुकाए चुप खड़ा था।

चम्पा ने कहा–'अरे, पतुरिया तुम नहीं जानते। देखो न, मैं हूँ पतुरिया ! रंडी!'

'न–न सरकार ! ऐसे न बोलो धर्मावतार !'

चम्पा को हँसी आ गई और हाथ जोड़े हुए सुरेमन को उस तरह खड़े देखकर उसकी हँसी दुगुनी होती गई।

चम्पा बड़े दुलार से बोली, 'तुम्हारी औरत का नाम क्या था ?'

'पक्षी का नाम ! पक्षी का नाम होता है कबूतर, तीतर, बटेर, गौरैया, श्यामा, बुलबुल.....।'

'सरकार जिसकी चोंक लाल होती है, पंख धानी रंग का।'

'ओहो ! सुग्गा.....तो !'

'हाँ–हाँ, वही सरकार ! वही.....।'

'तो ! सुग्गा नाम था तुम्हारी औरत का ! सुग्गा यानी सुगिया।'

सुरेमन बेतरह शरमा गया था, जैसे वह बचपन में पहले–पहल पहुना बनकर अपनी ससुराल में खड़ा हो।

चम्पा उसका कंधा छूकर बोली, 'सुनो, सुरेमन, तुम्हारी वह सुगिया अगर तुम्हारे पास आ जाए, तो तुम फिर उसे रख लोगे ?'

सुरेमन ने सिर हिलाकर कहा, 'हाँ, जरूर !'

चम्पा मौन खड़ी रह गई। सुरेमन को एकटक देखती हुई, जैसे वह उसके भीतर से कहीं बहुत गहरे उतर गई हो–अपार मनुष्यों की भीड़ में जहाँ स्त्री को लोग मजहब की नजर से देख रहे हैं। औरत मजहब है।

पूरब से बादलों की काली घटा बड़ी तेजी से उमड़ रही थी। हवा रूकी हुई थी।

चम्पा सुरेमन का हाथ पकड़कर बोली, 'तुम अपने गॉव जाओ सुरेमन !'

'और आप सरकार ?'

'मेरे लिए तो यह सारा संसार है सुरेमन ! कहीं भी चली जाऊॅगी !'

'आपको यहॉ मैदान में इस तरह छोड़कर ! चलिए न मेरी कुटिया पर ! इस बार आपके आस–पास किसी को न आने दूॅगा। सच, छिपाकर ले चलूॅगा।'

'नहीं सुरेमन ! तुम अकेले जाओ ! इत्मीनान रखो, मुझे कहीं भी कोई तकलीफ न होगी ! यह पत्थर की मूरत देख रहे हो न, मैं यही हूॅ। तो भला मुझे क्या दुःख होगा ! जाओ तुम.....।'

'मेरा कसूर धर्मावतार ?' सुरेमन हाथ जोड़े खड़ा रहा।

'तुम पत्थर को पूजने लगोगे सुरेमन !'

'मैं कुछ नहीं समझा सरकार !'

'बस, अब तुम जाओ सुरेमन !'

चम्पा की आज्ञा पाकर सुरेमन अपनी गाड़ी पर बैठा हुआ पानी भरे कछार के किनारे–किनारे पूरब दिषा की ओर मुड़ गया। पूरब से फिर वह कछार को पार कर दक्षिण दिषा की ओर चला जाएगा।

सुरेमन जब छोटी चम्पा की ऑखों से ओझल हुआ, तब उसकी हिम्मत की अकेली दीवार टूटने–सी लगी। आस–पास, चारों दिषाओं में कोई नहीं, कोई नहीं। वहॉ वह निरी अकेली चम्पा और सामने कछार के पानी के तट पर अहिल्या की वही मूरत। चम्पा ऊॅचे कगार की तरह मूर्ति पर हाहाकर टूट पड़ी, और षिषुवत् रोने लगी, जैसे युगों के बाद बेटी सहसा मॉ की गोद मिल गई हो।

चम्पा आज उस मॉ से पूछने लगी, 'मेरा कसूर क्या है ? मैं क्यों कर गुनाहगार हूं मॉ ! मैं तो वह थी ही नहीं, जिसे इस दुनिया ने हर रोज खरीदा और हर रोज जिसे फूल की तरह मसल देना चाहा। जो लोगों के बीच नाचती–गाती रही, हमेषा ऐयाषी के चंगुल में षिकार बनायी गयी, जो फ़ाहषा थी, वह मैं कहॉ थी मॉ ? मेरा जन्म तो हुआ, पर मैं अभी तक पैदा ही कहॉ हुई ? मेरी बड़ी चम्पा जिया कहा करती थी कि 'इष्क और मुहब्बत तो कुछ दिये बिना जी नहीं सकते। पर यह मुहब्बत और इष्क है क्या ? कहॉ है वह मेरा आषिक ? वह आज तक मुझे क्यों न मिला ? मैं गुनाहगार थी, नापाक थी, इसलिए क्या ? पर मॉ, जो अभी तक पैदा ही नहीं हुई, उससे गुनाह कब हो गया ? बड़ी चम्पा का जब नथ उतारा गया था, तब उसने मुझसे कहा था, बहिना, देख लेना एक दिन मुझे मेरा आषिक मिल जाएगा। फिर मैं उसी के हाथों पाक हो जाऊॅगी और उसे अपनी सारी मुहब्बत देकर सरजाम लूॅगी।'

मगर वह आषिक कहॉ है मॉ ?

रोती हुई छोटी चम्पा को लगा कि मूरत मॉ की ऑखों में ऑसू उमड़ रहे हैं। चम्पा वैरागी की तरह उस भरी ऑखों को देखते लगी, जैसे उन ऑखों ने चम्पा से एक सवाल पूछा हो–आषिक को ढूॅढ़ने के पहले तुम यह बताओ कि उसे देने के लिए तुम्हारे पास है क्या ?

चम्पा अपने–आपको मथने लगी, 'मेरे पास ?.....मेरे पास सिर्फ दुःख है।'

'फिर तुझे एक दिन तेरा आषिक मिल जाएगा !'

कछार की सूनी दिषाओं के उस पार, काले–काले बादलों से घिरे उफक पर बड़ी चम्पा, मॉ नैपाली बहू, अहिल्या मॉ, सुगिया और बसंतपुर सराय की सारी ऑखें मुस्सविर की तस्वीर की तरह खिच गईं। हे आषिक ! हे राजा !

हमारे पास देने के लिए केवल दुःख–धन है। लो इसे.....मैं अपने–आपको आज तुझे दे रही हूॅ।

बहुत तेज बारिष होने लगी।

कछार का पानी धीरे–धीरे बढ़ता हुआ अहिल्या की मूर्ति को घेरने लगा। चम्पा बेहतर भीगती एकटक उसे देख रही थी। कुछ ही देर बाद कछार के बढ़ते पानी में अहिल्या की मूर्ति डूब गई।

मूर्ति में अदृष्य होते ही छोटी चम्पा को लगा कि कोई उसके उदास घायल अंतर्मन को आरपार से छा गया है और उसमें एक अपूर्व उत्साह और रस की वर्षा होने लगी है।

उसके सामने नैपाली बहू का मुख चमक आया। मॉ नैपाली बहू ने कहा था, दुःख के सिवा और किसी भी तरीके से हम अपनी ताकत को नहीं पहचान सकते और अपनी ताकत को जितना ही कम करके हम जानेंगे, हम अपनी इज्जत भी उतनी ही कम करेंगे।

सिर झुकाकर छोटी चम्पा ने अदृष्य मूर्ति को प्रणाम किया, और भरे कंठ से बोली, 'मॉ यकीन रखो, मैं अपने दुःख की आग से अपने को जलने नहीं दूँगी। मैं अपने भोगे हुए सारे दुःख की कभी बेइज्जती नही करूँगी। मेरा ईष्वर दुःख का ईष्वर है।'

'अलविदा मॉ !

यह कहकर छोटी चम्पा सूने कछार को अपनी गति से चीरती हुई आगे बढ़ गई।

खलीलाबाद स्टेषन।

सुबह का वक्त था। गोरखपुर से लखनऊ जाने वाली गाड़ी के आने का समय हो रहा था। प्लेटफार्म पर पॉव रखते हुए छोटी चम्पा ने देखा, 'वेटिंगरूम' के सामने बड़ी भीड़ लगी हुई है; उधर से ऑसू पोंछती हुई दो–चार औरतें लौट रही हैं।

'क्या है भाई ?' एक मुसाफिर ने दूसरे से पूछा।

चम्पा पास ही खड़ी सब सुन रही थी।

मुसाफिर ने जवाब दिया, 'क्या बताऊँ, घोर कलयुग है इया कोई औरत अपने एक महीने के बच्चे को वहॉ छोड़ गई है। सिरहाने एक चिट्ठी रखी है कि मैं अपने इस बच्चे को मारना नहीं चाहती, पर इसे अपने संग भी नहीं रखना चाहती।' सो भइया, चार घण्टे से वह बच्चा वहीं पड़ा रो रहा है, पर कोई उसे नहीं लेता।

उधर से आते हुए दूसरे मुसाफिर ने कहा, 'स्टेषन मास्टर साहब कह रहे हैं कि उस लावारिस बच्चे को दोपहर वाली गाड़ी से वह गोरखपुर अनाथालय को भेज देंगे।'

गाड़ी आने को ही थी। छोटी चम्पा पवन वेग से 'वेटिंगरूम' के सामने पहुँची और भीड़ को चीरती हुई उसने झट बच्चे को अपने अंग में ले लिया।

लोग उसे आष्चर्य से देखते रह गए।

स्टेषन मास्टर ने सामने आकर पूछा, 'कौन हो तुम ?'

'औरत'

पास के सिपाही ने डॉटा, कैसी औरत ?'

'बस औरत।'

'तू ही इसकी मॉ है क्या ?'

'हॉ–हॉ, मैं ही हूँ।' चम्पा बिलकुल प्रतिज्ञासूचक स्वर में बोली।

चारों ओर से लोग कहने लगे, फिर तू इसे क्यों छोड़ गई थी ? अधर्मी कहीं की ! कलयुगी मॉ।'

'प्लेटफार्म पर लखनऊ जाने वाली गाड़ी आ खड़ी हुई। छोटी चम्पा बच्चे को अंक से लगाए सबकी ऑखें देख रही थी।

सिपाही ने कहा, 'तुम्हें पुलिस चौकी चलना होगा। पहले वहॉ तुम्हें अपना कलमबंद बयान देना होगा। और कौन है तुम्हारे साथ ?'

'कोई नहीं।'

'कहॉ की रहने वाली है ?'

'कहीं की नहीं।'

'कहॉ है तेरा शौहर ?'

'पता नहीं।'

सिपाही ने गुस्से में दॉत पीसते हुए कहा, 'बदमाष कहीं की ! चल पुलिस चौकी। चलकर वहीं बयान देना यह !'

गाड़ी ने सीटी दी। छोटी चम्पा ने एक अद्‌भुत नजर से समूची गाड़ी को देखा। पीछे गार्ड की हरी झंडी हिल रही थी–ॲधेरी रात में जैसे कोई किसी को रास्ता दिखा रखा हो।

गाड़ी सहसा खुल गई।

छोटी चम्पा बिजली की तरह एकाएक चमककर चलती हुई गाड़ी में घुस गई। और उसी क्षण जो उसका नहीं था, जो वह नहीं थी, जिसमें से उसे खामखाह गुजरना पड़ा था–वह सब–कुछ पीछे छूट गया।

गाड़ी में बैठकर चम्पा ने गुलाब की कली जैसे उस दुधमुंहे बच्चे को देखा। उसकी वे अनुपम ऑखें–समुद्र की तरह अथाह, निर्मल।

चमेली की पंखुरी–जैसी उसके होंठों को, सुहागिन के हाथों रचे हुए चन्दन–जैसे उसके माथे को छोटी चम्पा बार–बार अपनी ऑखों से छूने लगी।

गाड़ी तेज रफ्तार से भागी चली जा रही थी। छोटी चम्पा ने खिड़की से बाहर देखा। तेज ठंडी हवा उसके माथे को छू गई। पलकों और होंठो को जगा गई। रेलवे लाइन के किनारे जलकुम्भी के पुष्प से पटे हुए पोखरे, कमल और कोकाबेली के फूलों से भरे हुए ताल–तलैये और सरोवर जैसे छोटी चम्पा के संग–संग दौड़ते हुए उसे छू लेना चाह रहे थे।